अभिनव कृषि

वर्ष-4 अंक-2 जून-2022

विशेषांक

● खरीफ फसल उत्पादन तकनीक ● समन्वित कीट व रोग प्रबंधन ● खरपतवार प्रबन्धन ● मृदा एवं जल संरक्षण

प्रसार शिक्षा निदेशालय

कृषि विश्वविद्यालय, कोटा (राजस्थान)-324001

प्रशासनिक भवन
कृषि विश्वविद्यालय, कोटा

#IFFCONanoUrea
IFFCO
इफको नैनो यूरिया तरल
पेश है किसानों के लिए दुनिया का पहला नैनो यूरिया!
लागत कम करने में सहायक
मिट्टी की गुणवत्ता को बढ़ाए
पौधों के पोषण में सहयोगी
किसानों की आय में सुनिश्चित वृद्धि
फसल उपज को बढ़ाए
पारंपरिक यूरिया से सस्ता
IFFCO NANO UREA Liquid
FOLLOW US:
INDIAN FARMERS FERTILISER COOPERATIVE LIMITED
IFFCO Sadan, C-1 District Centre, Saket Place, New Delhi - 110017, INDIA
Phones : 91-11-26510001, 91-11-42592626. Website : www.iffco.coop
इण्डियन फारमर्स फर्टिलाइजर कोआपरेटिव लिमिटेड
जयपुर तृतीय तल, नेहरू सहकार भवन, जयपुर, राजस्थान, राजस्थान 302001
दूरभाष : 0141-2740660, 2740307, 2740307

ललित पाटीदार
(M.Sc. Horticulture)
मो. 9413023482, 9887437524
अम्बिका मॉर्डन एग्रीकल्चर
KRISHA
SUMITOMO CHEMICAL
Ranadey
DUPONT
BAYER
BASF
We create chemistry
नर्सरी टूल्स, मल्च, स्प्रे पम्प, खाद, बीज, कीटनाशक, वर्मी कम्पोस्ट, ऑर्गेनिक खाद एवं दवाई के लिए सम्पर्क करें।
चन्द्रभागा रोड़, झालरापाटन, जिला-झालावाड़ (राज.) 326023

कृषि प्रौद्योगिकी प्रबन्धन एवं गुणवत्ता सुधार केन्द्र

(Agriculture Technology Management and Quality Improvement Centre -ATMQIC)

प्रसार शिक्षा निदेशालय

कृषि विश्वविद्यालय, कोटा

स्थापना के उद्देश्य

- नवोन्मेषी कृषि प्रौद्योगिकी का प्रभावी हस्तानान्तरण
- किसान कॉल सेन्टर की स्थापना
- कृषि तकनीकी संग्रहालय की स्थापना
- कृषि संसाधन केन्द्रों की स्थापना
- कृषि आदान व उत्पाद बिक्री केन्द्र की स्थापना
- कृषक उपयोगी साहित्य प्रकाशन
- विश्वविद्यालय द्वारा विकसित विभिन्न तकनीकियों का संकलन एवं प्रदर्शन

स्वामी प्रकाशक : डॉ. एस.के. जैन, निदेशक, प्रसार शिक्षा निदेशालय
कृषि विश्वविद्यालय, कोटा
Website : https://aukota.org
Email: abhinavkrishi.aukota@gmail.com
दूरभाष : **0744- 2326727**

पुस्त प्रेष्य _____

स्वामी निदेशक प्रसार शिक्षा, कृषि विश्वविद्यालय, कोटा प्रकाशक डॉ. एस.के. जैन, मुद्रक श्री जमील अहमद, मैसर्स डायमण्ड प्रिन्टर्स, शॉप नं. 2, काली मस्जिद के पास, नई धानमण्डी, कोटा से मुद्रित एवं निदेशक, प्रसार शिक्षा निदेशालय, कृषि विश्वविद्यालय, बोरखेड़ा, कोटा, राज. से प्रकाशित, संपादक डॉ.एस.के. जैन

अभिनव कृषि

वर्ष–4 अंक–2 जून–2022 पृष्ठ संख्या : 40

संरक्षक

प्रोफेसर डी.सी. जोशी
कुलपति, कृषि विश्वविद्यालय, कोटा

सम्पादक मण्डल

डॉ. एस.के. जैन
निदेशक प्रसार शिक्षा
प्रधान संपादक एवं प्रकाशक

डॉ. के.सी.मीना
सह आचार्य (प्रसार शिक्षा)
संपादक एवं समन्वयक

डॉ. राकेश कुमार बैरवा
सह आचार्य (शस्य विज्ञान)
संपादक

डॉ. डी.के. सिंह
आचार्य (उद्यान विज्ञान)
सह–संपादक

डॉ. महेन्द्र सिंह
आचार्य (पशुपालन)
सह–संपादक

डॉ. सेवाराम रूण्डला
विषय विशेषज्ञ (मृदा विज्ञान)
सह–संपादक

श्रीमती गुंजन सनाढ्य
विषय विशेषज्ञ (गृह विज्ञान)
सह–संपादक

सुश्री सरिता
तकनीकी सहायक
सह–संपादक

मनोनीत सलाहकार मण्डल

डॉ.प्रताप सिंह
निदेशक, अनुसंधान

डॉ. आई.बी. मौर्य
अधिष्ठाता, उद्यानिकी एवं वानिकी महाविद्यालय, झालावाड़

डॉ. एम.सी. जैन
अधिष्ठाता, कृषि महाविद्यालय, कोटा

डॉ. मुकेश चन्द गोयल
निदेशक, पी.एम.एण्ड.ई.

सदस्यता शुल्क

- ☞ त्रैमासिक (प्रति अंक) 30 रू.
- ☞ वार्षिक (चार अंक) 100 रू
- ☞ आजीवन (15 वर्ष)1000 रू.

विज्ञापन दरें

(i)	अन्तिम सम्पूर्ण (रंगीन)	रू. 10,000/-
(ii)	प्रथम एवं अन्तिम पृष्ठ के पीछे (रंगीन)	रू. 6,000/-
(iii)	अन्तिम आधा पृष्ठ (रंगीन)	रू. 5,000/-
(iv)	प्रथम एवं अन्तिम पृष्ठ के पीछे आधा पृष्ठ (रंगीन)	रू. 3,000/-
(v)	अन्दर का सम्पूर्ण पृष्ठ (श्याम–श्वेत)	रू. 4,000/-
(vi)	अन्दर का आधा पृष्ठ (श्याम–श्वेत)	रू. 2,000/-

नोट : यदि विज्ञापन वर्ष के सभी चार अंकों के लिए दिया जाता है तो उपरोक्त दरों में 25 प्रतिशत की कमी की जायेगी।

सदस्यता एवं नवीनीकरण हेतु

खाता धारक	: DEE, Agriculture University, Kota
बैंक	: ICICI BANK, Nayapura, Kota
खाता संख्या	: 687801700345
IFSC	: ICIC0006878

लेख एवं सुझाव भेजने का पता

"अभिनव कृषि"
प्रसार शिक्षा निदेशालय, कृषि विश्वविद्यालय, कोटा
बोरखेड़ा, बारां रोड़ कोटा (राजस्थान) – 324001
Email: abhinavkrishi.aukota@gmail.com दूरभाष : 0744- 2326727

प्रकाशक: प्रसार शिक्षा निदेशालय, कृषि विश्वविद्यालय, कोटा
मुद्रक : डामयण्ड प्रिन्टर्स, नई धानमण्डी, कोटा (राज.) मो. 9414231079

नोट– "अभिनव कृषि" में आलेख प्रकाशन हेतु लेखकों का सदस्य होना अनिवार्य है।

अभिनव कृषि

वर्ष–4 अंक–2 जून–2022

अनुक्रमणिका

क्र.सं.	विषय विवरण	पृष्ठ संख्या
1.	हाड़ौती क्षेत्र के परिदृष्य में धान की सीधी बुवाई तकनीक जय कृष्णा सोलंकी एवं आर. एस. नारोलिया	1-2
2.	खरीफ में अरहर की लाभकारी कृषि अपनायें सुभाष चन्द्र शर्मा, आर. एस. नारोलिया एवं राजेश कुमार	3-4
3.	मूंगफली की खेतीः किसानों की आमदनी होगी दोगुना, मृदा की उर्वराशक्ति बढ़ेगी प्रकाश चन्द गुर्जर, गजानन्द जाट, आकाश तँवर, सुरेश कुमार एवं रूप सिंह	5-6
4.	मक्का की उन्नत खेती शिशराम जाखड़, सर्वेश त्रिपाठी, बरखा शर्मा एवं रामधन घसवा	7-9
5.	खरीफ दलहनी फसलों में समन्वित कीट एवं रोग प्रबंधन सरिता, रूप सिंह, कमला महाजनी एवं विक्रम	10-11
6.	सोयाबीन की वैज्ञानिक खेती का महत्व टीकम चन्द्र यादव, सुरेश कुमार जाट एवं पिंकी यादव	12-14
7.	सोयाबीन फसल के प्रमुख कीट एवं रोगों का प्रबंधन कर किसान बढ़ाये आय बी.के. पाटीदार, सी.बी. मीना, डी.एस. मीना, बी.एल. मीना एवं सुशीला कलवानियॉ	15-18
8.	हरी खाद के उपयोग से मृदा स्वास्थ्य एंव उत्पादकता में सुधार विनोद कुमार यादव, राजेन्द्र कुमार यादव एवं राकेश कुमार यादव	19-20
9.	राइजोबियम के द्वारा जैविक नत्रजन स्थिरीकरण–दलहनी फसलों के लिये एक वरदान अर्जुन सिंह जाट, सुमित्रा देवी बम्बोरिया एवं बलदेव राम	21-24
10.	चावल की जैव संवर्धित किस्में मनोज कुमार, संध्या, के .एम. शर्मा, मुकुल एवं पवन कुमार	25
11.	मिर्च में समेकित रोग एवं कीट प्रबंधन हनुमान सिंह	26-28
12.	कैसे करें वैज्ञानिक तरीके से बीजों का रख–रखाव एवं भंडारण भूरी सिंह एवं वर्षा कुमारी	29-30
13.	मिट्टी एवं जल संरक्षण का महत्व मनोज, हरफूल मीणा, मनोज कुमार शर्मा, राजेन्द्र कुमार यादव एवं विनोद कुमार यादव	31-32
14.	राष्ट्रीय कृषि बाजार – किसानो के लिए हो रहा एक वरदान साबित रोहताश कुमार, शुभम, ऋतम्भरा एवं गगनदीप सिंह	33-34
15.	सहभागी विधि से अनुश्रवण एवं मूल्यांकन सूर्या राठौड़ एवं मनमीत कौर	35
16.	पीएम कुसुम योजना : किसान ऊर्जा सुरक्षा एवं उत्थान महाभियान सोनिया ऋषि, देवेन्द्र कुमार एवं के. सी. मीना	36-37

डॉ. एस.के. जैन
निदेशक (प्रसार शिक्षा)

Directorate of Extension Education
प्रसार शिक्षा निदेशालय
AGRICULTURE UNIVERSITY, KOTA
कृषि विश्वविद्यालय, कोटा
Borkhera, Baran Road, Kota 324 001 (Raj.)
बोरखेडा, बारां रोड, कोटा 324001 (राज.)

प्रधान संपादक की कलम से.....

भारत एक कृषि प्रधान देश होते हुये भी यहा के सम्पन्न वर्ग में कृषकों की भागीदारी कम है। इसका मुख्य कारण कृषकों की जोत का दिन–प्रतिदिन छोटा होता जाना, उत्पाद का उचित मूल्य न मिलना, तकनीकी हस्तांतरण का अभाव तथा कुशल कृषि प्रबन्धन नहीं हो पाना है। अब समय केवल परमपरागत खेती करने का नहीं है, बल्कि उसमें नवीन तकनीकों के आयाम जोड़ने का है जैसे यदि हम सोया, उड़द, मूंग इत्यादि की खेती करते है तो इनके प्रसंस्करण तकनीकों को सीखकर अपनी आय को बढ़ाया जा सकता है। हमारा देश क्षेत्रीय भिन्नता के साथ जलवायु भिन्नता को सांझा करता है। अतः आवश्यकता है समेकित कृषि मॉडल को अपनाने की, जिससे आमदनी के कई नये स्रोत्र खुल सकें।

जैसा कि मौसम विभाग का अनुमान है कि इस वर्ष भी मानसून सामान्य से अच्छा रहेगा। देश की आधे से ज्यादा फसलें मानसूनी बारिश में लहाती है। पैदावार अच्छी रही तो हमारे किसानों की आमदनी में निश्चय ही वृद्धि होगी।

इस अंक में खरीफ ऋतु हेतु धान की सीधी बुवाई तकनीकी, सोयाबीन की प्रमुख कीट–व्याधि प्रबन्धन, अरहर की लाभकारी खेती, मूंगफली एवं मक्का की उन्नत खेती, मिर्ची में समेकित कीट प्रबन्धन, मिट्टी और जल संरक्षण, हरी खाद का उपयोग इत्यादि विषयों पर महत्वपूर्ण आलेखों का समायोजन किया गया है। ताकि आप सभी आगामी खरीफ फसलों से अधिक से अधिक लाभ प्राप्त कर सकेगें।

अंत में पत्रिका के सभी पाठकगणों, लेखकों, संपादक एवं सलाहकार मण्डल के सदस्यों को इस अंक के प्रकाशन के लिये हार्दिक शुभकामनाऐं देता हूं।

Sujael

(एस.के. जैन)

हाड़ौती क्षेत्र के परिदृष्य में धान की सीधी बुवाई तकनीक

जय कृष्णा सोलंकी एवं आर. एस. नारोलिया
कृषि महाविद्यालय, उम्मेदगंज-कोटा

धान खाद्यान्न फसलों में गेहूँ के बाद दूसरी सबसे महत्वपूर्ण फसल है। खरीफ में धान की खेती के अंतर्गत ज्यादातर वर्षा आधारित क्षेत्र है जिनमे सिंचाई का साधन सीमित रहता है वहीं धान–गेहूं फसल पद्धति वाले क्षेत्रों में भूमिगत जलस्तर नीचे जाने, नहरों में पानी अंतिम मुहाने पर नहीं पहुंचने, श्रमिकों की कमी एवं मानसून के विलम्ब से आने के कारण धान की रोपाई का कार्य समय पर नहीं हो पाता है जिसके कारण उत्पादन काफी हद तक प्रभावित होता है।

धान की खेती में ज्यादा संसाधन जैसे पानी, श्रम तथा ऊर्जा की आवश्यकता होती है एवं धान उत्पादन क्षेत्र में इन संसाधनों की कमी आती जा रही है। धान उत्पादन में जहाँ पानी खेतों में भर कर रखा जाता है जिसके कारण मीथेन गैस उत्सर्जन भी बढ़ता है जो की जलवायु परिवर्तन का एक मुख्य कारण है। रोपण पद्धति के लिए खेतों में पानी भरकर उसे ट्रैक्टर से मचाया जाता है जिससे मृदा के भौतिक गुण जैसे मृदा संरचना, मिट्टी संघनता तथा अंदरूनी सतह में जल की पारगम्यता आदि खराब हो जाती है जिससे आगामी फसलों की उत्पादकता में कमी आने लगती है। जलवायु परिवर्तन, मानसून की अनिश्चितता, भू–जल संकट, श्रमिकों की कमी और धान उत्पादन की बढ़ती लागत को देखते हुए हमें धान उपजाने की परंपरागत पद्धति–सीधी बुआई विधि को पुनः अपनाना होगा तभी हम आगामी समय में पर्याप्त धान पैदा करने में सक्षम हो सकते है।

धान में सीधी बुवाई की आवश्यकता क्यों?

रोपण विधि से धान की खेती करने में पानी की अधिक आवश्यकता पड़ती है। अनुमान है की 1 किलो धान पैदा करने के लिए लगभग 4000–5000 लीटर पानी की खपत होती है। विश्व में उपलब्ध ताजे जल की सर्वाधिक खपत धान की खेती में होती है। पानी की अन्य क्षेत्रों में मांग बढने के कारण आने वाले समय में खेती के लिए पानी की उपलब्धता कम होना सुनिश्चित है। रोपण विधि से धान की खेती करने के लिए समय पर नर्सरी तैयार करना, खेत में पानी की उचित व्यवस्था करके मचाई करना एवं अंत में मजदूरों से रोपाई करने की आवश्यकता होती है। इससे धान की खेती की कुल लागत में बढ़ोतरी हो जाती है। समय पर वर्षा का पानी अथवा नहर का पानी न मिलने से खेतों की मचाई एवं पौध रोपण करने में विलम्ब हो जाता है।

पौध रोपण हेतु लगातार खेत बचाने से मिट्टी की भौतिक दशा बिगड़ जाती है जो कि रबी फसलों की खेती के लिए उपयुक्त नहीं रहती है जिससे इन फसलों की उत्पादकता में कमी हो जाती है। लगातार धान–गेहूं फसल चक्र अपनाने से भूमि की भौतिक दशा खराब होने के साथ–साथ उनकी उर्वरता भी कम हो गई है। इन क्षेत्रों में पानी के अत्यधिक प्रयोग से भू–जल स्तर में निरंतर गिरावट दर्ज होती जा रही है। ऐसे में धान की रोपण विधि से खेती को हतोत्साहित करने की आवश्यकता है। धान की सीधी बुवाई तकनीक संसाधन सरंक्षित खेती की एक उत्तम तकनीक है, जिसे अपनाकर उपरोक्त समस्याओं को कम किया जा सकता है एवं उच्च उत्पादन प्राप्त किया जा सकता है।

बीज दर एवं बुआई

इस तकनीक की सफलता के लिए सही विधि एवं सही समय से बुआई करनी चाहिए। इस तकनीक से मिट्के स्वास्थ्य में सुधार के साथ उत्पादन लागत घटाते हुए किसान अधिक लाभ प्राप्त कर सकते है, सामान्यतौर पर किसान भाई धान की सीधी बुआई में 75–100 किग्रा. बीज प्रति हेक्टेयर प्रयोग करते है, जो कि अलाभकारी है। बीज दर को कम करके उत्पादन लागत को कम किया जा सकता है। सीधी बुवाई विधि हेतु 30 किलोग्राम बीज प्रति हेक्टेयर पर्याप्त होता है। परन्तु बीज प्रमाणित हो तथा उनकी जमाव क्षमता 85–90 प्रतिशत होना चाहिए। अंकुरण क्षमता कम होने पर बीज दर बढ़ा लेना आवश्यक है। बुवाई से पूर्व धान के बीजों का उपचार अति आवश्यक है एक किलोग्राम बीज की मात्रा के लिए 0.2 ग्राम स्ट्रेप्टोसाईक्लिन के साथ 2 ग्राम कार्बेन्डाजिम मिलाकर बीज को दो घंटे छाया में सुखाकर सीड ड्रिल मशीन द्वारा बुआई की जाती है। धान की सीधी बुआई हेतु भुरे फुदके के नियंत्रण के लिए इथीप्रोल व इमीडाक्लोप्रिड के मिश्रण को 4 लीटर पानी में 1 ग्राम मात्रा की दर से पावर स्प्रेयर से छिड़काव करना चाहिए।

धान की सीधी बुआई दो विधिओं से की जाती है। एक विधि में खेत तैयार कर ड्रिल द्वारा बीज बोया जाता है। बुआई के समय खेत में पर्याप्त नमीं होना आवश्यक है। दूसरी विधि में खेत में लेव लगाकर अंकुरित बीजों को ड्रम सीडर द्वारा बोया जाता है। बुवाई से पूर्व धान के खेत को यथासंभव समतल कर लेना चाहिए। धान की सीधी बुवाई करते समय बीज को 2–3 से.मी. गहराई पर ही बोना चाहिए। मशीन द्वारा सीधी बुवाई में कतार से कतार की दूरी 18–22 से.मी. तथा पौधे की दूरी 5–10 से.मी. होती है। इस विधि में वर्षा आगमन से पूर्व खेत तैयार कर सूखे खेत में धान की बिजाई की जाती है। अधिक उत्पादन के लिए इस विधि से बुआई जुताई करने के उपरांत जून के प्रथम सप्ताह में ट्रैक्टर चलित सीड ड्रिल द्वारा कतारों में 20 सेमी. की दूरी पर करें। ध्यान देने योग्य बात है कि बुआई के समय खेत में पर्याप्त नमी होनी चाहिए। धान की सीधी बुवाई के लिए उन्नत किस्म जैसे माही सुगंधा, पूसा सुगंधा–4, पूसा बासमती–5, पूसा बासमती 1509, प्रताप सुगंध –1 , इम्प्रोवेद पूसा बासमती 1 उपयुक्त रहती है ।

ट्रैक्टर चलित सीड ड्रिल द्वारा धान की सीधी बुवाई

सीधी बुवाई तकनीक द्वारा धान की खेती

उर्वरक प्रबंधन : धान की सीधी बुवाई जलवायु समुत्थानशील कृषि हेतु एक बेहद ही उपयोगी विधा है। यद्यपि परंपरागत रोपनी वाले धान की तुलना में सीधी बुआई विधि वाले धान में खरपतवार तथा पोषक तत्वों का उचित प्रबंधन करना अति आवश्यक होता है। मिट्टी परीक्षण के आधार पर खाद एवं उर्वरकों का संतुलित मात्रा में प्रयोग करें। सामान्यतः सीधी बुवाई वाली धान में प्रति हेक्टेयर 120–140 कि.ग्रा. नत्रजन, 50–60 किलो फास्फोरस और 40 किलो पोटाश की जरूरत होती है। नत्रजन की एक तिहाई और फास्फोरस तथा पोटाश की पूरी मात्रा बुवाई के समय प्रयोग करें। शेष नत्रजन की मात्रा को दो बराबर हिस्सों में बांटकर कल्ले फूटते समय तथा बाली निकलने के समय कतारों में दें। इसके अलावा धान–गेहू फसल चक्र में 25 किलोग्राम प्रति हेक्टेयर जिंक सल्फेट का प्रयोग बुवाई के समय करें।

सिंचाई प्रबंधन : धान फसल पर किये गए अनुसंधानों से ज्ञात हुआ है कि धान के खेत में लगातार जल भराव की जरूरत नहीं होती है। धान की सीधी बुवाई के समय खेत में उचित नमी होना जरूरी है। सूखे खेत में बुवाई की स्थिति में बुवाई के बाद दूसरे दिन हल्की सिंचाई करें। बुआई से प्रथम एक माह तक हल्की सिंचाई के द्वारा खेत में नमी बनाए रखें। फसल में पुष्पन अवस्थ प्रारंभ होने से 25–30 दिन तक खेत में पर्याप्त नमी बनाए रखे। दाना बनने की अवस्था लगभग एक सप्ताह में पानी की कमी खेत में नहीं होनी चाहिए। मुख्यतः कल्ला फूटने के समय, गभोट अवस्था और दाना बनने वाली अवस्थाओं में धान के खेत में पर्याप्त नमीं बनाए रखना आवश्यक है। कटाई से 15–20 दिन पहले सिंचाई बंद कर दें जिससे फसल की कटाई सुगमता से हो सके।

खरपतवार नियंत्रण : सीधी बिजाई वाले धान में खरपतवार प्रकोप अधिक होता है। खरपतवार–फसल प्रतिस्पर्धा के कारण धान उत्पादन में 20–80 प्रतिशत तक गिरावट आ सकती है। अतः सीधी बिजाई वाले धान में खरपतवार नियंत्रण अत्यावश्यक है। धान की सीधी बुआई में प्रथम 2–3 सप्ताह तक खेत में खरपतवार रहित अवस्था प्रदान करना उचित पैदावार के लिए आवश्यक है। सूखी अवस्था में धान की बुआई करने के बाद पेंडीमिथालिन (स्टॉम्प) 1 किलोग्राम सक्रिय तत्व प्रति हेक्टेयर के हिसाब से 500–600 लीटर पानी में घोल बनाकर बुआई के दूसरे–तीसरे दिन बाद परंतु अंकुरण के पूर्व समान रूप से छिड़काव करें। इससे चौड़ी पत्ती तथा घासकुल के खरपतवारों का जमाव रुक जाता है। बुआई के 20–25 दिन बाद आलमिक्स 20 प्रतिशत की 20 ग्राम प्रति हेक्टेयर या बिस्परिबक सोडियम (नोमिनी गोल्ड) 25 ग्राम सक्रिय तत्व प्रति हेक्टेयर की दर से बुआई के 15–25 दिनों बाद 500–600 लीटर पानी में घोलकर छिड़काव करने से चौड़ी पत्ती वाले खरपतवारों के साथ–साथ मोथाकुल के खरपतवार भी नियंत्रित रहते है। इसके बाद खरपतवार प्रकोप होने पर निराई–गुड़ाई (1–2 बार) की जा सकती है।

धान की सीधी बुवाई तकनीक से लाभ

- धान की कुल सिंचाई की आवश्यकता का लगभग 20 प्रतिशत पानी रोपाई हेतु खेत मचाने (लेव) में प्रयुक्त होता है। सीधी बुआई तकनीक अपनाने से 20 से 25 प्रतिशत पानी की बचत होती है, क्योंकि इस विधि से धान की बुवाई करने पर खेत में लगातार पानी बनाए रखने की आवश्यकता नही पड़ती है।
- सीधी बुआई करने से रोपाई की तुलना में 25–30 श्रमिक प्रति हेक्टेयर की बचत होती है। इस विधि में समय की बचत भी हो जाती है क्योंकि इस विधि में धान की पौध तैयार और रोपाई करने की जरूरत नहीं पड़ती है।
- धान की नर्सरी उगाने, खेत मचाने तथा खेत में पौध रोपण का खर्च बच जाता है। इस प्रकार सीधी बुआई में उत्पादन व्यय कम आता है।
- रोपाई वाली विधि की तुलना में इस तकनीक में उर्जा व इंधन की बचत होती है, प्रति हेक्टेयर 35–40 लीटर डीजल की बचत होती है। समय से धान की बुआई संपन्न हो जाती है इससे इसकी उपज अधिक मिलने की संभावना होती है।
- धान की खेती रोपाई विधि से करने पर खेत की मचाई (लेव) करने की जरूरत पड़ती है, जिससे भूमि की भौतिक दशा पर विपरीत प्रभाव पड़ता है जबकि सीधी बुवाई तकनीक से मिट्टी की भौतिक दशा पर कोई विपरीत प्रभाव नहीं पड़ता है।
- इस विधि से किसान भाई जीरो टिलेज मशीन में खाद व बीज डालकर आसानी से बुवाई कर सकते हैं। इससे बीज की बचत होती है और उर्वरक उपयोग दक्षता बढ़ती है। सीधी बुआई का धान रोपित धान की अपेक्षा 7–10 दिन पहले पक जाता है, जिससे रबी फसलों की समय पर बुआई की जा सकती है।

पेंडीमिथालिन एवं बिस्परिबक सोडियम द्वारा सीधी बुवाई धान की खेती में खरपतवार नियंत्रण

खरीफ में अरहर की लाभकारी कृषि अपनायें

सुभाष चन्द्र शर्मा, आर. एस. नारोलिया एवं राजेश कुमार
कृषि अनुसंधान केंद्र, उम्मेदगंज, कोटा एवं यांत्रिक कृषि फार्म, उम्मेदगंज, कोटा

अरहर की दाल को तुअर भी कहा जाता है। यदि प्रोटीन की उपलब्धता बढ़ानी है तो दलहनों का उत्पादन बढ़ाना होगा। इसके लिए उन्नतशील प्रजातियां और उनकी उन्नतशील कृषि विधियों का विकास करना होगा। इसमें खनिज, कार्बोहाइड्रेट, लोहा, कैल्शियम आदि पर्याप्त मात्रा में पाया जाता है। यह सुगमता से पचने वाली दाल है, अतः रोगी को भी दी जा सकती है। अरहर एक विलक्षण गुण सम्पन्न फसल है। इसका उपयोग अन्य दलहनी फसलों की तुलना में दाल के रूप में सर्वाधिक किया जाता है। इसके अतिरिक्त इसकी हरी फलियां सब्जी के लिये, खली चूरी पशुओं के लिए रातव, हरी पत्ती चारा के लिये तथा तना ईंधन, झोपड़ी और टोकरी बनाने के काम लाया जाता है। इसके पौधों पर लाख के कीट का पालन करके लाख भी बनाई जाती है। इसमें प्रोटीन भी अधिक (21–26 प्रतिशत) पाई जाती है। यह बहुधा वर्षा ऋतु के आरंभ में और खरीफ की फसलों के साथ मिलाकर बोई जाती है। अरहर के साथ कोदो, बगरी–धान, ज्वार, बाजरा, मूँगफली, तिल आदि मिलाकर बोते हैं। वर्षा के अंत में ये फसलें पक जाती है और काट ली जाती हैं। इसके बाद जाड़े में अरहर बढ़कर खेत को पूर्णतया भर लेती है तथा रबी की फसलों के साथ मार्च के महीने में तैयार हो जाती है। पकने पर इसकी फसल काटकर दाने झाड़ लिए जाते हैं। चने की तरह इसकी जड़ों में भी हवा से खाद नाइट्रोजन इकट्ठा करने की क्षमता होती है। अरहर बोने से खेतों की उर्वरा शक्ति बढ़ती है और इसे स्वयं खाद की आवश्यकता नहीं होती। इसको पानी की भी अधिक आवश्यकता नहीं होती है। अरहर की फसल कम सिंचाई वाले क्षेत्रों तथा बारानी क्षेत्रों के लिये उपयोगी है। इसे मिश्रित फसल के रूप में किसी अन्य फसल के साथ बोकर अतिरिक्त लाभ लिया जा सकता है।

उन्नत किस्में

- **प्रभात :** यह किस्म 115 से 120 दिन में पकती है इसके दानों का रंग पीला तथा 1000 दानों का वजन 50–55 ग्राम होता है। इसकी उपज 12 से 15 क्विंटल प्रति हैक्टर होती है।

- **ग्वालियर 3 :** यह किस्म 180–250 दिन में पक कर तैयार होती है। इसकी ऊंचाई 225 से 275 सेन्टीमीटर तथा उपज 8 से 15 क्विंटल प्रति हैक्टर होती है।

- **यू पी ए एस 120 :** 120 से 140 दिन में पकने वाली इस किस्म के पौधो की ऊंचाई 150 से 200 सेन्टीमीटर तथा पैदावार 10 से 15 क्विंटल प्रति हैक्टर होती है।

- **आई सी पी एल 151 :** यह एक शीघ्र पकने वाली किस्म है। मध्यम 120–145 दिन में पकती है। इसमें पकाव एक साथ आता है अर्थात डिटरमिनेट टाईप की किस्म है। ऊंचाई 100 से 120 सेन्टीमीटर होती है। इसका दाना बड़ा व हल्का पीले रंग का होता है। भारी मिट्टी वाले क्षेत्रों के लिये उपयुक्त है। इस किस्म की पैदावार 12 से 20 क्विंटल प्रति हैक्टेयर होती है।

- **आई सी पी एल 87 :** यह मध्यम समय 140–150 दिन पकने वाली बौनी किस्म है। इसकी ऊंचाई 90 से 100 सेन्टीमीटर तथा पैदावार 15 से 20 क्विंटल प्रति हैक्टेयर होती है। फलियां मोटी तथा लम्बी होती है तथा गुच्छो में आती है व एक साथ पकती है। इसके बाद गेहूँ बोया जा सकता है। यह फाइटोप्थेरा (झुलसा) रोगरोधी है।

- **आई सी पी एल 88039 :** यह किस्म 140–150 दिन में पक कर 14–16 क्विंटल प्रति हैक्टेयर उपज देती है। इसके पौधों की ऊँचाई 200–225 से.मी., दानों का रंग भूरा एवं 100 दानों का वजन 9–10 ग्राम होता है।

- **पी.ए.यू. 881 :** इसके पौधे मध्यम ऊँचाई 200–210 सेमी., दानों का रंग भूरा एवं 100 दानों का वजन 8–9 ग्राम होता है। यह किस्म 135–140 दिन में पकड़कर 18–22 क्विंटल प्रति हैक्टेयर उपज देती है।

खेत एवं उसकी तैयारी : अरहर की जड़े मिट्टी में काफी गहराई तक जाकर पोषक तत्व ग्रहण करती है। अतः गहरी अच्छे जल निकास वाली भूमि इस फसल के लिये उपयुक्त रहती है। उथली व जल भराव वाली मिट्टी में इसकी खेती सफलतापूर्वक नहीं की जा सकती है। वर्षा प्रारम्भ होते ही जमीन को तीन चार बार हल से जोत लीजिये। पहली जुताई मिट्टी पलटने वाले हल से तथा बाद में देशी हल / बक्खर, कल्टीवेटर या हेरो से करें । इस बात को ध्यान में रखते हुऐ जुताई करें कि मिट्टी में ढेले टूट जाये, जिससे मिट्टी में ज्यादा नमी संग्रह हो सके ।

खाद एवं उर्वरक : अरहर की फसल में 20 किग्रा. नत्रजन, 60 किलो फॉस्फोरस रसायनिक उर्वरक एवं 5 टन गोबर की खाद तथा बीज को राइजोबियम एवं पी.एस.बी. कल्चर से बीजोपचार करने से अधिक उपज प्राप्त होती है। अरहर का उत्पादन बढाने के लिये सिफारिश अनुसार नत्रजन फास्फोरस उर्वरकों तथा 60 किलो सल्फर एवं 25 किलो जिंकसल्फेट का इनकी कमी वाले स्थानों पर प्रयोग करें। सोयाबीन व अरहर की अन्त : शष्य से अधिक उत्पादन हेतु अनुशंसित उर्वरकों की 75 प्रतिशत मात्रा तथा 5 टन गोबर की खाद व 5 किलोग्राम जिंकसल्फेट का प्रयोग करें। थायोयूरिया 500 पीपीएम के दो पर्णीय छिड़काव फूल आने व फली बनने की अवस्था पर करने से अरहर की अधिक उपज प्राप्त होती है।

बीज उपचार : बुवाई से पहले बीज को 3 ग्राम थाइरम प्रति किलो बीज की दर से उपचारित करें। इसके बाद बीजों को राइजोबियम कल्चर से उपचारित करके बोयें ।

बीज की मात्रा एवं बुवाई : इसकी बुवाई मई से प्रारम्भ होकर अगस्त माह तक चलती रहती है। देर से बोई गई फसल में हमेशा रोग एवं कीड़ों का प्रकोप होता है। अतः उपयुक्त समय पर बुवाई करें। बुवाई का उपयुक्त समय मध्य जून है।

- अकेली फसल के लिये 15 से 20 किलो तथा मिश्रित फसल के लिये करीब 6 से 7 किलो बीज की प्रति हैक्टर आवश्यकता रहती है। बीज को हल के पीछे पोरा लगाकर ऊरिये। ध्यान रखें कि बीज 5 सेन्टीमीटर से ज्यादा गहरा नही गिरे। बुवाई के समय उपयुक्त नमी का होना अत्यन्त आवश्यक है।
- अरहर की कतार से कतार की दूरी जमीन की उर्वरा शक्ति तथा साथ में उगाई जाने वाली फसल पर निर्भर है। अरहर की प्रभात एवं ग्वालियर 3 किस्म के लिये कतार से दूसरी कतार की दूरी क्रमशः 30 एवं 60 सेन्टीमीटर रखें। साधारणतया शीघ्र पकने वाली अरहर की किस्मों के लिये कतारो के बीच की दूरी 40 से 50 सेन्टीमीटर और देर से पकने वाली किस्मों के लिये 50–60 सेन्टीमीटर रखें।
- अरहर की सोयाबीन के साथ कतार से कतार 30 सेमी. की दूरी रखकर 2 : 2 के अनुपात में अर्न्तशस्य के रूप में बोना लाभदायक पाया गया है।

सिंचाई : अरहर को बारानी फसल के रूप में बोया जाता है परन्तु आवश्यकता होने पर जहाँ सिंचाई के साधन उपलब्ध हो, वहाँ इसे एक या दो सिंचाई देना लाभदायक रहता है। यदि वर्षा न हो तो, पहली सिंचाई फसल की प्रारम्भिक अवस्था में ही करनी चाहिये। दूसरी सिंचाई सर्दी में फूल व फलियाँ लगते समय करिये। इससे फसल पाले द्वारा होने वाले नुकसान से भी बच सकेगी।

निराई गुड़ाई : प्रारम्भिक अवस्था से ही खेत से खरपतवारों को निकालते रहे। जब फसल 3 से 4 सप्ताह की हो जाये तब कतारों में से अतिरिक्त पौधों को उखाड़ कर पौधे से पौधे की दूरी, किस्म के आधार पर 25 से 35 सेन्टीमीटर कर लीजिये। खरपतवार नियंत्रण के लिये 2 लीटर एलाक्लोर को 600 लीटर पानी में घोलकर प्रति हेक्टर की दर से बीज की बुवाई के बाद एवं बीज के अंकरण से पहले स्प्रे करें।

- अरहर की फसल में खरपतवार नियंत्रण हेतु फसल को बोने के 2–3 दिन के अन्दर पेन्डीमिथेलिन (30 ई.सी.) खरपतवारनाशी रसायन का 0.75 किलो सक्रिय तत्व प्रति हैक्टेयर (व्यवसायिक दर 2.50 लीटर प्रति हैक्टेयर) की दर से छिड़काव कर व 50 दिन बाद एक निराई गुड़ाई करने पर खरपतवारों की प्रभावी रोकथाम की जा सकती है।

- अरहर की बुवाई मिश्रित फसल के रूप में करने से कतारों के बीच में छूटने वाली जगह का उपयोग हो जाता है तथा किसान को अतिरिक्त आमदनी मिल जाती है। यह फसल प्रारम्भिक अवस्था में बहुत ही धीरे धीरे बढती है इसलिये इसके पकने से पहले कोई शीघ्र पकने वाली व उथली जड़ों वाली फसल ले सकते है। इसी प्रकार छाया चाहने वाली फसले जैसे हल्दी, अदरक इत्यादि जहाँ बोई जाती है, को भी इसके साथ मिश्रित फसल के रूप में बो सकते है।
- अरहर अगर मिश्रित फसल के रूप में बोई गई है तो साथ में ली गई फसल की कटाई के तुरन्त बाद अरहर की कतारों के बीच से हल या हेरो चलाइये। यह क्रिया अरहर की बढ़ोतरी में सहायक होती है।

- अरहर फसल में समेकित प्रबंधन तकनीकें जैसे समेकित पोषक तत्व, खरपतवार एवं कीट प्रबंधन अपनाकर अधिकतम उत्पादन लिया जा सकता है।

पौध संरक्षण

- **दीमक :** जहाँ दीमक लगती हो वहाँ बुवाई से पूर्व 1.5 प्रतिशत क्यूनालफॉस चूर्ण 25 किलो प्रति हैक्टर की दर से भूमि उपचार करें।

- **लाल लट :** प्रारम्भिक अवस्था मे अरहर के बढते हुए पौधे की पत्तियों को लाल बाल वाली लट खा जाती है। इन कीड़ों से फसल को बचाने के लिए क्यूनालफॉस 1.5 प्रतिशत या मिथाइल पैराथयॉन 2 प्रतिशत चूर्ण 20–25 किलो या एक से डेढ़ लीटर क्यूनालफॉस 25 ई सी या मोनोक्रोटोफॉस 36 एस.एल. या 2 किलो कार्बेरिल का भुरकाव/ छिड़काव दो या तीन बार फसल पर करें।

- **फली छेदक :** यह कीट अरहर मे भारी नुकसान पहुँचाते हैं। इसके लिये मोनोक्रोटोफॉस 36 एस एल या क्यूनॉलफॉस 25 ईसी एक लीटर या मैलाथियॉन 50 ईसी सवा लीटर, या कार्बेरिल 50 प्रतिशत घुलनशील चूर्ण ढाई किलो की दर से फूल आते ही छिड़क दीजिये। अरहर फसल में फली छेदक एवं मरूका कीट के प्रारम्भिक प्रकोप पर क्लोरएन्ट्रानिलिप्रोल 18.5 ई.सी. का 100 ग्राम प्रति हैक्टेयर + एन.ए.ए. का 40 पी.पी.एम. घोल का छिड़काव फूल शुरू होने पर तथा इसके 15 दिन उपरान्त इण्डोक्साकार्ब 15.8 ई.सी. का 375 मिली प्रति हैक्टेयर की दर से घोल बनाकर छिड़काव करने से प्रभावी नियंत्रण पाया गया है।

- **उखटा :** अरहर की यह प्रमुख बीमारी है। उपयुक्त फसल चक्र लेकर इससे बचा जा सकता है।

कटाई एवं पैदावार : जून जुलाई माह में बोई गई अरहर की अगेती फसल नवम्बर दिसम्बर में पक कर तैयार हो जाती है, जबकि देर से पकने वाली फसल की कटाई मार्च अप्रेल तक हो जाती है। अरहर की प्रति हैक्टर 20 से 30 क्विंटल पैदावार ली जा सकती है।

इस प्रकार किसान उपरोक्त वैज्ञानिक तकनीकों को अपना कर अरहर की फसल मे अधिक उत्पादन प्राप्त कर सकते है।

❋❋❋

मूंगफली की खेती: किसानों की आमदनी होगी दोगुना, मृदा की उर्वराशक्ति बढ़ेगी

प्रकाश चन्द गुर्जर, गजानन्द जाट, आकाश तँवर, सुरेश कुमार एवं रूप सिंह
महाराणा प्रताप कृषि एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय-उदयपुर एवं कृषि विज्ञान केंद्र-कोटा

मूंगफली भारत की मुखय महत्त्वपूर्ण तिलहनी फसल है। यह गुजरात, आन्ध्र प्रदेश, तमिलनाडू तथा कर्नाटक राज्यों में सबसे अधिक उगाई जाती है। अन्य राज्य जैसे मध्यप्रदेश, उत्तरप्रदेश, राजस्थान तथा पंजाब में भी यह काफी महत्त्वपूर्ण फसल मानी जाने लगी है। राजस्थान में इसकी खेती लगभग 3.47 लाख हैक्टर क्षेत्र में की जाती है जिससे लगभग 6.81 लाख टन उत्पादन होता है। इसकी औसत उपज 1963 कि.ग्रा. प्रति हैक्टर है। भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद् के अधीनस्थ अनुसंधानों संस्थानों, एवं कृषि विश्वविद्यालयों ने मूंगफली की उन्नत तकनीकियाँ जैसे उन्नत किस्में, रोग नियंत्रण, निराई–गुड़ाई एवं खरपतवार नियंत्रण आदि विकसित की हैं जिनका विवरण नीचे दिया गया हैं।

जलवायु : यह लगभग सभी राज्यों में होती है लेकिन जहां उपयुक्त जलवायु होती है वहां इसकी फसल बेहतर होती है। सूर्य की अधिक रोशनी और उच्च तापमान इसकी बढ़त के लिए अनुकूल माने जाते हैं। वही अच्छी पैदावार के लिए कम से कम 30 डिग्री सेल्सियस तापमान होना आवश्यक है। यूं तो इसकी खेती वर्ष भर की जा सकती है लेकिन खरीफ सीजन की बात की जाए तो जून माह के दूसरे पखवाड़े तक इसकी बुवाई की जानी चाहिए।

खेत की तैयारी : मूंगफली की खेत की तीन से चार बार जुताई करनी चाहिए। इसके लिए मिट्टी पलटने वाले हल से जुताई सही होती है। खेत में नमी को बनाए रखने के लिए जुताई के बाद पाटा लगाना जरूरी है। इससे नमी काफी समय तक बनी रहती है।

खाद एवं उर्वरक : उर्वरकों का प्रयोग भूमि की किस्म, उसकी उर्वराशक्ति, मूंगफली की किस्म, सिंचाई की सुविधा आदि के अनुसार होता है। मूंगफली दलहन परिवार की तिलहनी फसल होने के कारण इसको सामान्य रूप से नाइट्रोजनधारी उर्वरक की आवश्यकता नहीं होती, फिर भी हल्की मिट्टी में शुरूआत की बढ़वार के लिये 15–20 किग्रा नाइट्रोजन तथा 50–60 कि.ग्रा. फास्फोरस प्रति हैक्टर के हिसाब से देना लाभप्रद होता है। उर्वरकों की पूरी मात्रा खेत की तैयारी के समय ही भूमि में मिला देना चाहिए। यदि कम्पोस्ट या गोबर की खाद उपलब्ध हो तो उसे बुवाई के 20–25 दिन पहले 5 से 10 टन प्रति हैक्टर खेत मे बिखेर कर अच्छी तरह मिला देनी चाहिए। अधिक उत्पादन के लिए अंतिम जुताई से पूर्व भूमि में 250 कि.ग्रा.जिप्सम प्रति हैक्टर के हिसाब से मिला देना चाहिए।

नीम की खल का प्रयोग : नीम की खल के प्रयोग का मूंगफली के उत्पादन में अच्छा प्रभाव पड़ता है। अंतिम जुताई के समय 400 कि.ग्रा. नीम खल प्रति हैक्टर के हिसाब से देना चाहिए। नीम की खल से दीमक का नियंत्रण हो जाता है तथा पौधों को नत्रजन तत्वों की पूर्ति हो जाती है। नीम की खल के प्रयोग से 16 से 18 प्रतिशत तक की उपज में वृद्धि, तथा दाना मोटा होने के कारण तेल प्रतिशत में भी वृद्धि हो जाती है। दक्षिण भारत के कुछ स्थानों में अधिक उत्पादन के लिए जिप्सम भी प्रयोग में लेते हैं।

सिंचाई : मूंगफली खरीफ फसल होने के कारण इसमें सिंचाई की प्रायः आवश्यकता नहीं पड़ती। सिंचाई देना सामान्य रूप से वर्षा के वितरण पर निर्भर करता हैं फसल की बुवाई यदि जल्दी करनी हो तो एक पलेवा की आवश्यकता पड़ती है। यदि पौधों में फूल आते समय सूखे की स्थिति हो तो उस समय सिंचाई करना आवश्यक होता है। फलियों के विकास एवं गिरी बनने के समय भी भूमि में पर्याप्त नमी की आवश्यकता होती है। जिससे फलियाँ बड़ी तथा खूब भरी हुई बनें। अतः वर्षा की मात्रा के अनुरूप सिंचाई की जरूरत पड़ सकती है। मूंगफली की फलियों का विकास जमीन के अन्दर होता है। अतः खेत में बहुत समय तक पानी भराव रहने पर फलियों के विकास तथा उपज पर बुरा असर पड़ सकता है। अतः बुवाई के समय यदि खेत समतल न हो तो बीच–बीच में कुछ मीटर की दूरी पर हल्की नालियाँ बना देना चाहिए। जिससे वर्षा का पानी खेत में बीच में नहीं रूक पाये और अनावश्यक अतिरिक्त जल वर्षा होते ही बाहर निकल जाए।

मूंगफली की उन्नत किस्में : मूंगफली की अच्छी पैदावार के लिए अच्छी किस्म के बीज उपयोग करें। मूंगफली की अच्छी उन्नत किस्में आर.जी. 425, 120–130, एमए10 125–130, एम–548 120–126, टीजी 37ए 120–130, जी 201 110–120 प्रमुख हैं। इनके अलावा अन्य किस्में एके 12, –24, जी जी 20, सी 501, जी जी 7, आरजी 425, आरजे 382 आदि हैं।

बुवाई का समय : खरीफ सीजन की मूंगफली की बुवाई का सही समय जून का दूसरा पखवाड़ा होता है। रबी एवं जायद की फसलों के लिए उचित तापमान देख कर किया जा सकता है। सामान्य रूप से 15 जून से 15 जुलाई के मध्य मूंगफली की बुवाई की जा सकती है। बीज बोने से पहले 3 ग्राम थायरम या 2 ग्राम मैकोजेब दवा प्रति किलो बीज के हिसाब से लेना चाहिए। इस दवाई से बीज में लगने वाले रोगों से बचाया जा सकता है और इसके अंकुरण भी अच्छा होता है।

खरपतवार नियंत्रण : खरपतवार की अधिकता से फसल पर बुरा असर पड़ता है। बुवाई के करीब 3 से 6 सप्ताह के बीच कई प्रकार की घास निकलना आरंभ हो जाती है। कुछ उपायों या दवाओं के प्रयोग से आप आसानी से इस पर नियंत्रण कर सकते हैं। खरपतवार का प्रबंधन नहीं किया गया तो 30 से 40 प्रतिशत फसल खराब हो जाती है।

बुवाई के बाद करें ये काम

- बुवाई के 15 दिनों बाद पहली निराई–गुड़ाई करें।
- दूसरी निराई – गुड़ाई बुवाई के 35 दिन बाद करें।
- खड़ी फसल में 150–200 लीटर पानी में 250 मिलीलीटर इमेजाथापर 10 प्रतिशत एस एल मिला कर छिडकाव करना चाहिए।

- तीन दिनों के भीतर प्रति एकड़ खेत में 700 ग्राम पेंडीमिथेलीन 38.7 प्रतिशत का प्रयोग करें।

फसल चक्र : असिंचित क्षेत्रों में सामान्य रूप से फैलने वाली किस्में ही उगाई जाती हैं जो प्रायः देर से तैयार होती है। ऐसी दशा में सामान्य रूप से एक फसल ली जाती है। परन्तु गुच्छेदार तथा शीघ्र पकने वाली किस्मों के उपयोग करने पर अब साथ में दो फसलों का उगाया जाना ज्यादा संभव हो रहा है। सिंचित क्षेत्रों में सिंचाई करके जल्दी बोई गई फसल के बाद गेहूँ की खासकर देरी से बोई जाने वाली किस्में उगाई जा सकती हैं।

रोग नियंत्रण

उगते हुए बीज का सड़न रोग: कुछ रोग उत्पन्न करने वाले कवक (एर्स्प्युजलस नाइजर, एर्स्प्युजलस फ्लेवस) जब बीज उगने लगता है उस समय इस पर आक्रमण करते हैं। इससे बीज पत्रों, बीज पत्राधरों एवं तनों पर गोल हल्के भूरे रंग के धब्बे पड़ जाते हैं। बाद में ये धब्बे मुलायम हो जाते हैं तथा पौधे सड़ने लगते हैं और फिर सड़कर गिर जाते हैं। फलस्वरूप खेत में पौधों की संखया बहुत कम हो जाती है और जगह–जगह खेत खाली हो जाता है। खेत में पौधों की भरपूर संख्या के लिए सामान्य रूप से मूंगफली के प्रमाणित बीजों को बोना चाहिए। अपने बीजों को बोने से पहले 2.5 ग्राम थाइरम प्रति किलोग्राम बीज के हिसाब से उपचारित कर लेना चाहिए।

रोजेट रोग : रोजेट (गुच्छरोग) मूंगफली का एक विषाणु (वाइरस) जनित रोग है इसके प्रभाव से पौधे अति बौने रह जाते हैं साथ पत्तियों में ऊतकों का रंग पीला पड़ना प्रारम्भ हो जाता है। यह रोग सामान्य रूप से विषाणु फैलाने वाली माहूँ से फैलता है अतः इस रोग को फैलने से रोकने के लिए पौधों को जैसे ही खेत में दिखाई दें, उखाड़कर फेंक देना चाहिए। इस रोग को फैलने से रोकने के लिए इमिडाक्लोरपिड 1 मि.ली. को 3 लीटर पानी में घोल कर छिड़काव कर देना चाहिए।

टिक्का रोग : यह इस फसल का बड़ा भयंकर रोग है। आरम्भ में पौधे के नीचे वाली पत्तियों के ऊपरी सतह पर गहरे भूरे रंग के छोटे–छोटे गोलाकार धब्बे दिखाई पड़ते हैं ये धब्बे बाद में ऊपर की पत्तियों तथा तनों पर भी फैल जाते हैं। संक्रमण की उग्र अवस्था में पत्तियाँ सूखकर झड़ जाती हैं तथा केवल तने ही शेष रह जाते हैं। इससे फसल की पैदावार काफी हद तक घट जाती है। यह बीमारी सर्कोस्पोरा परसोनेटा या सर्कोस्पोरा अरैडिकोला नामक कवक द्वारा उत्पन्न होती है। भूमि में जो रोगग्रसित पौधों के अवशेष रह जाते हैं उनसे यह अगले साल भी फैल जाती है इसकी रोकथाम के लिए डाइथेन एम–45 को 2 किलोग्राम एक हजार लीटर पानी में घोलकर प्रति हैक्टर की दर से दस दिनों के अन्तर पर दो–तीन छिड़काव करने चाहिए।

कीट नियंत्रण

रोमिल इल्ली : रोमिन इल्ली पत्तियों को खाकर पौधों को अंगविहीन कर देता है। पूर्ण विकसित इल्लियों पर घने भूरे बाल होते हैं। यदि इसका आक्रमण शुरू होते ही इनकी रोकथाम न की जाय तो इनसे फसल की बहुत बड़ी क्षति हो सकती है। इसकी रोकथाम के लिए आवश्यक है कि खेत में इस कीड़े के दिखते ही जगह–जगह पर बन रहे इसके अण्डों या छोटे–छोटे इल्लियों से लद रहे पौधों या पत्तियों को काटकर या तो जमीन में दबा दिया जाय या फिर उन्हें घास–फूँस के साथ जला दिया जाय। इसकी रोकथाम के लिए क्विनलफास 1 लीटर कीटनाशी दवा को 700–800 लीटर पानी में घोल बना प्रति हैक्टर छिड़काव करना चाहिए।

मूंगफली की माहु : सामान्य रूप से छोटे–छोटे भूरे रंग के कीड़े होते हैं। तथा बहुत बड़ी सख्या में एकत्र होकर पौधों के रस को चूसते हैं। साथ ही वाइरस जनित रोग के फैलाने में सहायक भी होती है। इसके नियंत्रण के लिए इस रोग को फैलने से रोकने के लिए इमिडाक्लोरपिड 1 मि.ली. को 1 लीटर पानी में घोल कर छिड़काव कर देना चाहिए।

लीफ माइनर : लीफ माइनर के प्रकोप होने पर पत्तियों पर पीले रंग के धब्बे दिखाई पड़ने लगते हैं। इसके गिडार पत्तियों में अन्दर ही अन्दर हरे भाग को खाते रहते हैं और पत्तियों पर सफेद धारियां सी बन जाती हैं। इसका प्यूपा भूरे लाल रंग का होता है इससे फसल की काफी हानि हो सकती हैं। मादा कीट छोटे तथा चमकीले रंग के होते हैं मुलायम तनों पर अण्डा देती है। इसकी रोकथाम के लिए इमिडाक्लोरपिड 1 मि.ली. को 1 लीटर पानी में घोल छिड़काव कर देना चाहिए।

सफेद लट : मूंगफली को बहुत ही क्षति पहुँचाने वाला कीट है। यह बहुभोजी कीट है इस कीट की ग्रव अवस्था ही फसल को काफी नुकसान पहुँचाती है। लट मुख्य रूप से जड़ों एवं पत्तियों को खाते हैं जिसके फलस्वरूप पौधे सूख जाते हैं। मादा कीट मई–जून के महीने में जमीन के अन्दर अण्डे देती है। इनमें से 8–10 दिनों के बाद लट निकल आते हैं। और इस अवस्था में जुलाई से सितम्बर–अक्टूबर तक बने रहते हैं। शीतकाल में लट जमीन में नीचे चले जाते हैं और प्यूपा फिर गर्मी व बरसात के साथ ऊपर आने लगते हैं। क्लोरोपायरिफास से बीजोपचार प्रारंभिक अवस्था में पौधों को सफेद लट से बचाता है। अधिक प्रकोप होने पर खेत में क्लोरोपायरिफास का प्रयोग करें। इसकी रोकथाम फोरेट की 25 किलोग्राम मात्रा को प्रति हैक्टर खेत में बुवाई से पहले भुरका कर की जा सकती है।

कटाई एवं गहाई : सामान्य रूप से जब पौधे पीले रंग के हो जायें तथा अधिकांश नीचे की पत्तियाँ गिरने लगे तो तुरंत कटाई कर लेनी चाहिए। फलियों को पौधों से अलग करने के पूर्व उन्हें लगभग एक सप्ताह तक अच्छी प्रकार सुखा लेना चाहिए। फलियों को तब तक सुखाना चाहिए जब तक उनमें नमी की मात्रा 10 प्रतिशत तक न हो जायें क्योंकि अधिक नमी वाली फलियों को भंडारित करने पर उस पर बीमारियों का खासकर सफेद फंफूदी का प्रकोप हो सकता है।

उपज एवं आर्थिक लाभ : उन्नत विधियों के उपयोग करने पर मूंगफली की सिंचित क्षेत्रों में औसत उपज 20–25 क्विण्टल प्रति हेक्टर प्राप्त की जा सकती है। इसकी खेती में लगभग 25–30 हजार रुपये प्रति हेक्टर का खर्चा आता हैं। मूंगफली का भाव 30 रुपये प्रतिकिलो रहने पर 35 से 40 हजार रुपये प्रति हेक्टर का शुद्ध लाभ प्राप्त किया जा सकता है।

मक्का की उन्नत खेती

शिशराम जाखड़, सर्वेश त्रिपाठी, बरखा शर्मा एवं रामधन घसवा
कृषि विज्ञान केन्द्र जावरा, जिला रतलाम (म.प्र)

मक्का मोटे अनाजों की श्रेणी में एक प्रमुख खाद्य फसल है इसकी उत्पादन क्षमता खाद्यान्न फसलों में सबसे अधिक होने के कारण इसे खाद्यान्न फसलों की रानी कहा जाता है। मक्का को पहले गरीबों का मुख्य भोजन माना जाता था, परंतु वर्तमान समय में मक्का से लगभग 100 से भी ज्यादा उत्पाद तैयार किए जाते हैं इनमें से मक्के का दलिया जो कि नाश्ते के रूप में प्रचलित है, साथ ही छोटे बच्चों का पौष्टिक भोजन भी माना जाता है।

अन्य फसलों की तुलना मे मक्का अल्प समय में पकने और अधिक पैदावार देने वाली फसल है। अगर किसान भाई थोड़े से ध्यान से और आज की तकनीकी के अनुसार खेती करे, तो इस फसल की अधिक पैदावार से अच्छा मुनाफा ले सकते है। इसमे, कार्बोहाइड्रेट 70, प्रोटीन 10 और तेल 4 प्रतिशत पाया जाता है। ये सब तत्व मानव शरीर के लिए बहुत ही आवश्यक है। इसके गुणकारी होने के कारण पहले की तुलना में आज के समय इसका उपयोग मानव आहर के रूप में ज्यादा होता है।

भूमि का चयन एवं तैयारी : मक्का की खेती के लिए उचित जल निकास युक्त बलुई मटियार से दोमट मृदा, जिसमें वायु संचार एवं पानी के निकास की उत्तम व्यवस्था हो तथा पीएच मान 7.0 के आस–पास हो उस मिट्टी में मक्का की खेती सफलतापूर्वक की जा सकती है।

मक्का की खेती के लिए खेत की तैयारी जून के प्रथम सप्ताह मैं शुरु कर देनी चाहिए, खरीफ की फसल के लिए एक गहरी जुताई करनी चाहिए अगर खेत गर्मियों में खाली है तो जुताई गर्मियों में करना अधिक लाभप्रद रहता है इस जुताई से खरपतवार व रोगों की रोकथाम में सहायता मिलती है, साथ ही खेत की नमी को बनाए रखने के लिए कम से कम समय पर जुताई करके तुरंत पाटा लगाना लाभदायक रहता है। जुताई का मुख्य उद्देश्य मिट्टी को भुरभुरी बनाना है यदि गोबर की खाद का प्रयोग करना हो तो इसे अंतिम जुताई के समय पूर्ण रूप से सड़ी हुई गोबर की खाद को जमीन में अच्छी तरह से मिलाएं।

मक्का की उन्नत किस्में : अति शीघ्र पकने वाली किस्में (75 दिन से कम) – जवाहर मक्का–8, विवेक–4, विवेक–17, विवेक–43, विवेक–42 और प्रताप हाइब्रिड मक्का–1 आदि प्रमुख है।

शीघ्र पकने वाली किस्में (85 दिन से कम) : जवाहर मक्का–12, अमर, आजाद कमल, पंत संकुल मक्का– 3, चन्द्रमणी, प्रताप–3, विकास मक्का–421, हिम–129, डी.एच.एम.–107, डी.एच.एम.–109 पूसा अरली हाइब्रिड मक्का–1, पूसा अर्ली हाइब्रिड मक्का–2, प्रकाश, पी एम एच–5, प्रा 68, एक्स–3342, डी.के.सी.–7074, जे.के.एम. एच.–175 और हाशेल व बायो–9637 आदि प्रमुख है।

मध्यम अवधि में पकने वाली किस्में (95 दिन से कम) : जवाहर मक्का–216, एच.एम.–10, एच.एम.–4, प्रताप–5, पी–3441, एन. के.–21, के.एम.एच.–3426, के.एम.एच.–3712, एनएमएच–803 और बिस्को 2418 आदि मुख्य है।

देरी से पकने वाली किस्में (95 दिन से अधिक) : गंगा–11, त्रिसुलता, डेक्कन–101, डेक्कन–103 डेक्कन–105, एच.एम.–11, एच.क्यू.पी. एम.–4, सरताज, प्रो–311, बायो–9681, सीड टैक–2324, बिस्को–855, एन.के.–6240 और एस.एम.एच.–3904 आदि प्रमुख है।

बुवाई का समय : मक्का की फसल मुख्यत खरीफ ऋतु में ली जाती है खरीफ ऋतु में बुवाई मानसून पर निर्भर रहती है जहां पर सिंचाई की सुविधा उपलब्ध रहती है वहां खरीफ में बुवाई का उपयुक्त समय मध्य जून से मध्य जुलाई, रबी में अक्टूबर से नवंबर तक तथा जायद में फरवरी से मार्च के बीच में बुवाई कर देनी चाहिए ।

बीज दर

- संकर जातियां – 18 से 20 किलो/हे.
- कम्पोजिट जातियां – 20 से 25 किलो/हे.
- हरे चारे के लिए – 40 से 45 किलो/हे.

बीज उपचार : बीज को रात भर पानी में भिगोने तथा सुबह छायादार जगह पर सुखा कर बोने से अंकुरण जल्दी होता है तथा बीज को बीज एवं मृदा जनित रोगों और कीट व्याधियों से बचाने के लिए बुवाई से पूर्व कवकनाशी तथा कीटनाशकों जैसे बाविस्टीन तथा कैप्टान 2 ग्राम प्रति किलोग्राम बीज या एप्रोन 35 एस.डी. और इमिडाक्लोप्रिड या फिप्रोनिल 4 मि.ली. प्रति किलोग्राम बीज से उपचारित करने के बाद जैविक उर्वरको जैसे एजोस्पिरिलम, पी.एस.बी कल्चर 10 ग्राम प्रति किलोग्राम बीज का उपचार करके बुवाई करनी चाहिए।

बुवाई की विधि : पौधों की जड़ों को पर्याप्त नमी और जलभराव से होने वाले नुकसान से बचाने के लिए बीज को मेड़ों पर बोया जाए, बुवाई उचित दूरी (पंक्ति से पंक्ति 60 से.मी. और पौधे से पौधे की दूरी 20–25 से. मी.) पर ही लगाना चाहिए। आजकल विभिन्न बीज माप प्रणालियों के प्लांटर उपलब्ध हैं प्लांटर का उपयोग करने से एक ही बार में बीज

उर्वरको को उचित स्थान पर डालने में मदद मिलती है परंतु चारे के लिए बुवाई सीडड्रिल द्वारा करनी चाहिए बुवाई के 1 माह पश्चात मिट्टी चढ़ाने का कार्य करना चाहिए।

पोषक तत्व प्रबंधन : मक्का एक खाद्यान्न फसल है इसलिए इसको पोषक तत्वों की अधिक मात्रा में आवश्यकता रहती है तथा मक्का की अधिक उपज के लिए बुवाई से पहले मिट्टी की जांच करवाना अति आवश्यक है। बुवाई से 10 से 15 दिन पूर्व खेत में भली–भांति सड़ी हुई 10–12 टन गोबर की खाद प्रति हेक्टेयर मिला देनी चाहिए तथा 90–100 किलोग्राम नाइट्रोजन, 30 से 40 किलोग्राम फास्फोरस, 30 से 40 किलोग्राम पोटाश तथा जस्ते की कमी वाले क्षेत्रों में जिंक सल्फेट 20 से 25 किलोग्राम प्रति हेक्टेयर की दर से बुवाई के समय डाल देना चाहिए, फास्फोरस, पोटाश और जिंक की पूरी मात्रा तथा 1/3 नाइट्रोजन को बुवाई के समय देना चाहिए शेष नाइट्रोजन को दो हिस्सों में बाद में देनी चाहिए 30 प्रतिशत नाइट्रोजन फसल में 8 पत्तियां आने के समय देनी चाहिए।

जल प्रबंधन : मक्का कम व अधिक पानी दोनों में ही संवेदनशील होता है मक्का एक ऐसी फसल है जो ना सूखा सहन कर सकती और ना ही अधिक पानी सहन कर सकती है। अतः मक्का फसल में उचित जल प्रबंधन हेतु निम्न बातों का ध्यान रखना आवश्यक है। खेत में जल निकासी के लिए नालियां, खेत की ढलान के अनुसार बुवाई के समय ही तैयार कर देनी चाहिए व समय पर अतिरिक्त पानी कि निकासी कर देनी चाहिए वर्षा ऋतु में वर्षा सामान्य रही तो सिंचाई की आवश्यकता नहीं होती है क्योंकि भारत में लगभग 80 प्रतिशत मक्का विशेष रूप से वर्षा सिंचित क्षेत्रों में उगाया जाता है मक्का जब 10 से 15 दिन का हो जाए तब इसमें मिट्टी चढ़ा देना चाहिए जिसमें कतारों के बीच नालियां बन जाए जो वर्षा नही होने की स्थिति में पानी देने के काम व अधिक वर्षा की स्थिति में जल निकासी के काम में आ सकेगी। फसल को सिंचाई की आवश्यकता हो उसी समय सिंचाई करनी चाहिए। सिंचाई की दृष्टि से नई पौध की ऊंचाई घुटनों तक, फूल आने तथा दाने भराव की अवस्थाएं सबसे संवेदनशील होती है तथा इन अवस्थाओं में अगर सिंचाई की सुविधा हो तो सिंचाई अवश्य करनी चाहिए अन्यथा उपज में काफी कमी हो जाती है।

निराई गुड़ाई एव खरपतवार नियंत्रण : मक्का की अच्छी उपज हेतु खरपतवार नियंत्रण आवश्यक है यदि बरसात के दिनों में निराई गुड़ाई के लिए समय नहीं मिल पाता है तो शाकनाशीयों का प्रयोग भी कर सकते हैं । वर्षा ऋतु में खरपतवारनाशीयों के प्रयोग से लाभदायक परिणाम मिलते हैं शाकनाशी रसायनों में एट्राजीन (50 प्रतिशत डब्ल्यू. पी.) के प्रयोग से 1 वर्षीय घास तथा चौड़ी पत्तियों वाले खरपतवारो का नियंत्रण हो जाता है लेकिन दूब, मोथा व केना आदि खरपतवार नहीं मरते हैं। अतः इनको खुरपी से खेत मे से निकाल कर नियंत्रण किया जा सकता है। एट्राजीन की मात्रा भूमि के प्रकार पर निर्भर करती है जो हल्की मिट्टियों में कम तथा भारी मिट्टियों में अधिक होती है। 0.5 किलोग्राम एट्राजीन प्रति हेक्टेयर की आवश्यकता होती है जिसको लगभग 500 से 600 लीटर पानी में घोलकर बुवाई के तुरंत बाद छिड़काव करना चाहिए मृदा सतह पर छिड़काव के समय नमी का होना अति आवश्यक है। सामान्यत खरीफ ऋतु के मौसम में खरपतवारो की समस्या अधिक रहती है जो फसल से पोषण, जल व प्रकाश के लिए प्रतिस्पर्धा करते हैं जिसके कारण उपज में 10 से 40 प्रतिशत तक नुकसान होता है।

मक्का की फसल के प्रमुख खरपतवार निम्न प्रकार से हैं

(1) संकीर्ण पत्तियों वाले खरपतवार जैसे सावा, गूंज घास, वाइपर घास, मकरा, चिरचिटा, बनचरी, बंदरा, नरकुल, दूब तथा मोथा आदि।

(2) चौड़ी पत्तियों वाले खरपतवार जैसे कुनरा घास, कुंद्रा घास, चौलाई, साठी, कंकूबा, हजार दाना, जंगली जूट, सफेद मुर्गा, मकोई, हुल हुल तथा गोखरू आदि।

पौध संरक्षण

कीट प्रबंधन

तना भेदक : मक्के में तना भेदक का लार्वा मुख्य रूप से हानिकारक होता है तना भेदक के पतंगे पत्तियों पर अंडे देते हैं इनकी सुंडी गोभ में घुसकर पौधों को नष्ट कर देती है पौधा यदि 20 से 25 दिन तक बच जाए तो उसमें तना भेदक के लिए प्रतिरोधक क्षमता प्रबल हो जाती है।

नियंत्रण : तना भेदक का प्रकोप अधिक हो तो इसकी रोकथाम के लिए पौधे जमने के 10–12 दिन के पश्चात प्रति हेक्टेयर 8 ट्राइकोकार्ड का रिलीज करने से भी इनकी रोकथाम की जा सकती है।

दीमक : दीमक तने के साथ सुरंग बनाकर पौधों को नष्ट कर देती है ग्रसित पौधा हाथ से खींचने पर आसानी से बाहर आ जाता है व खोखली जड़ों में मिट्टी नजर आती है।

नियंत्रण : दीमक के प्रकोप वाले क्षेत्रों में क्लोरपाइरीफोस से उपचारित बीजों का प्रयोग करना चाहिए। पहली फसल के अवशेष खेत में नहीं रहने देने चाहिए हल्का पानी लगाने के बाद फिप्रोनिल के दाने उचित जगह पर डालने चाहिए।

फॉल आर्मी वर्म : यह सैन्य कीट है जो पत्तियों और मक्का के भुट्टो को चट कर जाता है फॉल आर्मीवर्म कीट के प्रकोप का खतरा वातावरण में नमी के कारण अधिक बढ़ जाता है जिससे मक्के की पौधे को बढ़ने की शक्ति को समाप्त कर देता है और यदि समय पर इसका नियंत्रण नहीं किया गया तो पूरा पौधा ही चट कर जाता है।

नियंत्रण : कीट के नियंत्रण हेतु मक्का की फसल के लिए न्यायोचित तरीके से अनुशंसित रसायन या इमामेक्टीनबेंजोएट 6 ग्राम प्रति 15 लीटर पानी या स्पिनोसेड 45 एस.सी का 200 मि.ली. लीटर प्रति हेक्टेयर, थायोमेथक्साम 12.6 प्रतिशत के साथ लेम्डसाइलो हेलेथ्रीन 9.5 प्रतिशत मिली लीटर या थायोडिकार्प 75 प्रतिशत डब्लूपी मिली प्रति लीटर पानी में मिलाकर घोल बनाकर छिड़काव करें। स्पाइनो सेड 48 एससी या 45 एससी प्रति 0.3 मिली प्रति लीटर पानी में घोल बना कर छिड़काव करें।इससे बहुत हद तक कीट के प्रकोप को रोका जा सकता है।

व्याधियाँ

पत्ती झुलसा : पत्ती झुलसा निचली पत्तियों से शुरु होकर ऊपर की ओर बढ़ता है। लंबे, अंडाकार, भूरे धब्बे पत्ती पर पड़ते हैं, जो पत्ते की निचली सतह पर ज्यादा साफ दिखते हैं।

नियंत्रण : रोकथाम हेतु 2.5 ग्राम मेन्कोजेब या 3 ग्राम प्रोबिनेब या 2 ग्राम डाईथेन जेड– 78 या 1 मिलीलीटर फेमोक्साडोन 16.6 प्रतिशत + सायमेक्सानिल 22.1 प्रतिशत एस सी या 2.5 ग्राम मेटालैक्सिल या 3 ग्राम सायमेक्सेनिल + मेंकोजब प्रति लीटर पानी में छिड़कें 10 दिन अन्तराल के बाद फिर छिड़काव करें।

जीवाणु तना सड़न : जीवाणु तना सड़न में मुख्य तना मिट्टी के पास से भूरा,पिलपिला एवं मुलायम हो कर वहां से टूट जाता है। सड़ते हुए भाग से शराब जैसी गंध आती है।

नियंत्रण रोकथाम : अधिक नाइट्रोजन न डालें, खेत में पानी भरा न रहने दें। खेत में बुवाई के समय, फिर गुडाई के वक्त व फिर नर फूल निकलने पर 6 किलोग्राम प्रति एकड़ ब्लीचिंग पाउडर तने के पास डालें। इसे यूरिया के साथ कतई भी न मिलाएं, दोनों को कम से कम 1 सप्ताह के अंतर पर डालें।

नियंत्रण : रोग दिखाई देने पर 15 ग्राम स्ट्रेप्टोसाइक्लीन अथवा 60 ग्राम एग्रीमाइसीन तथा 500 ग्राम कॉपर आक्सीक्लोराइड प्रति हेक्टेयर की दर से छिड़काव करने से अधिक लाभ होता है।

भूरा धारीदार मृदुरोमिल आसिता रोग : भूरा धारीदार मृदुरोमिल आसिता रोग में पत्ते पर हल्की हरी या पीली, 3 से 7 मिलीमीटर चौड़ी धारियां पड़ती हैं, जो बाद में गहरी लाल हो जाती है। नम मौसम में सुबह के समय उन पर सफेद या राख के रंग की फंफूद नजर आती है।

नियंत्रण : रोकथाम हेतु लक्षण दिखने पर मेटालेक्सिल + मेंकोजेब 30 ग्राम प्रति 15 लीटर पानी का छिड़काव करें, 10 दिन बाद पुनः दोहराएं।

रतुआ : पत्तों की सतह पर छोटे, लाल या भूरे, अंडाकार, उठे हुए फफोले पड़ते हैं। ये पत्ते पर अमूमन एक कतार में पड़ते हैं।

नियंत्रण : रोकथाम हेतु हैक्साकोनाजोल या प्रोपिकोनाजोल 15 मिलीलीटर प्रति 15 लीटर पानी में मिलाकर छिड़कें, 15 दिन बाद पुनः दोहराएं।

तुलासिता रोग : इस रोग में पत्तियों पर पीली धारियां पड़ जाती है। पत्तियों के नीचे की सतह पर सफेद रूई के समान फफूंदी दिखाई देती है। ये धब्बे बाद में गहरे अथवा लाल भूरे पड़ जाते हैं। रोगी पौधे में भुट्टा कम बनते हैं या बनते ही नहीं हैं। रोगी पौधे बौने एवं झाड़ीनुमा हो जाते हैं।

नियंत्रण : इनकी रोकथाम के लिए जिंक मैगनीज कार्बामेट या जीरम 80 प्रतिशत, दो किलोग्राम अथवा 27 प्रतिशत के तीन लीटर प्रति हेक्टेयर की दर से छिड़काव आवश्यक पानी की मात्रा में घोलकर करना चाहिए।

कटाई : फसल अवधि पूर्ण होने के पश्चात अर्थात् चारे वाली फसल बोने के 60–65 दिन बाद, दाने वाली देशी किस्म बोने के 75–85 दिन बाद, व संकर एवं संकुल किस्म बोने के 90–115 दिन बाद तथा दाने मे लगभग 25–30 प्रतिशत् तक नमी हाने पर कटाई करनी चाहिए। कटाई के बाद मक्का फसल में सबसे महत्वपूर्ण कार्य गहाई है इसमें दाने निकालने के लिये सेलर का उपयोग किया जाता है। सेलर नहीं होने की अवस्था में साधारण थ्रेशर में सुधार कर मक्का की गहाई की जा सकती है इसमें मक्के के भुट्टे के छिलके निकालने की आवश्यकता नहीं है। सीधे भुट्टे सुखे होने पर थ्रेशर में डालकर गहाई की जा सकती है।

उपज क्विंटल/हेक्टेयर

1. शीघ्र पकने वाली 50–60 क्विंटल/हेक्टेयर
2. मध्यम पकने वाली 60–65 क्विंटल/हेक्टेयर
3. देरी से पकने वाली 65–70 क्विंटल/हेक्टेयर

भण्डारण : कटाई व गहाई के पश्चात प्राप्त दानों को धूप में अच्छी तरह सुखाकर भण्डारित करना चाहिए। यदि दानों का उपयोग बीज के लिये करना हो तो इन्हें इतना सुखा लें कि नमी करीब 12 प्रतिशत रहे।

❋❋❋

खरीफ दलहनी फसलों में समन्वित कीट एवं रोग प्रबंधन

सरिता, रूप सिंह, कमला महाजनी एवं विक्रम
कृषि विश्वविद्यालय, कोटा एवं राजस्थान कृषि महाविद्यालय, उदयपुर

भारतीय कृषि में क्षेत्रफल एवं उत्पादन दोनो ही दृष्टि से दलहनी फसलों का खास स्थान है। शाकाहारी भोजन में प्रोटीन का मुख्य जरीया होने के कारण दलहनी फसलों का महत्त्व काफी बढ़ जाता है। चना, मूंग, मोठ, चवला, उड़द, अरहर व सोयाबीन खास दलहनी फसलें हैं। दलहनी वर्ग की इन सभी फसलों में प्रोटीन काफी मात्रा में पाया जाता है। खरीफ दलहनी फसलों में अरहर, उड़द, मूंग, मोठ एवं चवला प्रमुख हैं। दलहनी फसलों में कई प्रकार के कीटों व रोगों का प्रकोप होता है, जिससे उत्पादन अधिक प्रभावित होता है। उत्पादन की उन्नत तकनीक, उन्नतशील प्रजातियों व कीटों एवं रोगों के उचित प्रबंधन से किसान दलहनी फसलों की उपज को बढ़ा सकते हैं। खरीफ दलहनी फसलों में लगने वाले कीट व रोग का समेकित प्रबंधन निम्न प्रकार है।

उड़द, मूंग एवं मोठ के प्रमुख कीट एवं रोग

- **फलीछेदक:** इस कीट की सूंडियां उड़द एवं मूंग की पत्तियों को पहले खाती हैं। बाद में जैसे ही फलियां बनना प्रारम्भ होती हैं, तो फलियों को भेदकर उनके विकसित हो रहे दानों को खाती हैं।

- **थ्रिप्स:** इसके शिशु एवं प्रौढ़ पत्तियों व फूलों का रस चूसते हैं। इससे पत्तियां सिकुड़ती हैं एवं फूल मुड़ने लगते हैं व गिर जाते हैं फलस्वरूप फलियां कम लगती है।

- **सफेद मक्खी:** इसके शिशु एवं प्रौढ़ दोनों पौधों की पत्तियों एवं कोमल तनों से रस चूसकर हानि पहुंचाते हैं। यह कीट पीला मौजेक रोग विषाणु को अधिक फैलाता हैं। इससे पत्तियां पीली पड़कर सूखने लगती हैं। इसके अतिरिक्त फसल पर यह कीट मधुस्राव छोड़ता है, जिस पर बाद में काले रंग की फफूंद उग जाती है। इसके कारण प्रकाश संश्लेषण क्रिया सुचारू रूप से न होने से पौधे का विकास अवरूद्ध हो जाता है। प्रभावित पौधे से उत्पादन नहीं मिल पाता है।

- **पीला चित्रवरण (येलो मोजैक) रोग:** इसे पीला चितेरी रोग भी कहते हैं। यह एक विषाणु जनित रोग है, जो सफेद मक्खी द्वारा फैलता हैं। रोगी पौधों की पत्तियों पर पीले, सुनहरे चकत्ते पाये जाते हैं। रोग की उग्र अवस्था में पूरी पत्ती पीली पड़ जाती है। पत्तियां विरूपित होकर आकार में छोटी हो जाती हैं। अपेक्षा कम लगती हैं। संक्रमण की भंयकर स्थिति में फलियां या तो नहीं बनती अथवा बहुत छोटी बनती हैं। दाने सिकुड़कर छोटे हो जाते हैं। नियंत्रण हेतु प्रतिरोधी प्रजातियों का प्रयोग सबसे महत्त्वपूर्ण उपाय है। यह बीमारी सफेद मक्खी द्वारा फैलती है अत: सफेद मक्खी के नियंत्रण के लिए कीटनाशी दवा जैसे डायमिथोएट 30 इ.सी. 1 लीटर प्रति हेक्टेयर का 2 से 3 बार छिड़काव करना चाहिए।

- **पर्णदाग रोग:** इसे पत्तियों का धब्बा रोग भी कहते हैं। यह एक फफूंदजनित रोग है। इस रोग के लक्षण छोटे–छोटे धब्बों के रूप में पत्तियों पर देखा जाता है। पत्तियों पर भूरे रंग के गोलाई लिए हुए कोणीय धब्बे बनते हैं। इसमें बीच का भाग हल्के राख के रंग का या हल्का भूरा तथा किनारा लाल बैंगनी रंग का होता है। ये धब्बे तनों पर भी पाये जा सकते है। रोगी पौधों की पत्तियां फूल लगने के समय गिर जाती हैं। रोग की उग्र अवस्था में फलियों पर धब्बों के बनने से उनका रंग काला पड़ जाता हैं। बीज भी सिकुड़कर हल्के बनते हैं। रोग नियंत्रण हेतु कॉर्बन्डाजिम (0.05 प्रतिशत) बुवाई के 30 दिन बाद छिड़काव करें।

- **चूर्णील आसिता :** प्रारम्भिक अवस्था में धूंधले रंग के धब्बे के रूप में दिखाई देते है एवं इनके उपर सफेद पाउडर के समान संरचना दिखाई देती है। सफेद पाउडर रूपी संरचना तेजी से बढ़ती है एवं पत्ती की निचली सतह, तनों, पुष्पवृन्तो, फलियों पर फैल जाते है। रोग के कारण पौधों में समयपूर्व परिपक्वता आ जाती है जिससे उपज का भारी नुकसान होता है। चूर्णील असिता रोग के लिए सल्फर अथवा गंधक सबसे उपयुक्त कवकनाशी है। (इसके लिए कैराथेन 2 प्रतिशत या सल्फेक्स 0.3 प्रतिशत घोल बनाकर छिड़काव करें।)

- **पर्णव्याकुंचन लीफ (क्रिकल):** इस रोग के विशिष्ट लक्षण में पत्तियों की सामान्य से अधिक वृद्धि तथा बाद में इनमें सिलवटें या मरोड़ पड़ना होता है। ये पत्तियां छूने पर सामान्य पत्तियों से अधिक मोटी तथा खुरदरी प्रतीत होती हैं। इस रोग का प्रसार माहूं कीट के द्वारा होता है। रोगी पौधे को उखाड़कर जला देना चाहिए। रोगरोधी प्रजातियां उगानी चाहिए।

- **रूक्ष रोग (एंथ्रेक्नोज):** पत्तियों एवं फलियों पर भूरे गोल धंसे हुए धब्बे

पड़ जाते हैं। इन धब्बों का केन्द्र गहरे रंग का और बाहरी सतह चमकीली लाल रंग की होती हैं। नियंत्रण हेतु स्वस्थ बीज का उपयोग करें। बीजों को बोने से पूर्व बाविस्टीन या कवच (1.5 ग्राम) या केप्टान अथवा थायरम (2.5 ग्राम) प्रति किलो बीज दर से उपचारित कर बोएं। खड़ी फसल में छिड़काव के लिए मैन्कोजेब का प्रयोग 0.25 प्रतिशत का घोल बनाकर किया जा सकता है ।

खरीफ अरहर के प्रमुख कीट एवं रोग

- **पत्ती एवं प्ररोह मोड़क कीट :** यह कीट जुलाई–अगस्त में सर्वाधिक सक्रिय रहता है। पौधे की निचली सतह की पत्ती पर इसका प्रभाव अधिक होता हैं। इसकी सुंडी ऊपरी 3–4 पत्तियों को मोड़कर एक लूप जैसा बना लेती है और उसी को खाती रहती है। इस प्रकार क्षतिग्रस्त पौधे की वृद्धि रूक जाती है। प्रभावित पौधे में बहुत कम पत्तियां आती है।

- **फली भेदक कीट :** मादा कीट अरहर के पुष्पों, फलियों, कोमल फलियों एवं कभी–कभी प्ररोह के अग्रभाग पर एक–एक करके अण्डे देती हैं। रात्रि में दिये गये गोल अण्डों से 2–5 दिनों में गिडारें निकलकर करीब 4–5 दिनों तक फलियों के ऊंपरी भाग को खुरचकर खाती हैं। तत्प चात गिडारें (सूंडियां) फलियों में गोलाकार छिद्र बनाकर विकसित हो रहे दानों को खा जाती हैं तथा छिद्रों के स्थान पर सूंडी का मल लगा रहता है। कीट की हानि आर्थिक क्षति स्तर पर पंहुचने पर 15 दिनों के अंतराल पर एचएनपीवी की 250 लार्वा समतुल्यांक मात्रा/हैक्टर की दर से 3 बार छिड़काव करना चाहिए। इस घोल को प्रभावी बनाने के लिए 0.5 प्रतिशत गुड़ व 0.1 प्रतिशत साबुन का घोल मिलाकर छिड़काव करना चाहिए।

- **फली मक्खी :** यह कीट अरहर का प्रमुख शत्रु हैं। वयस्क मक्खी हरे रंग की होती हैं। इसका आकार छोटा होता है। अक्टूबर से अप्रैल के मध्य अरहर की फलियों पर मक्खी का प्रकोप अत्यधिक रहता है। अण्डों से निकलने के बाद गिडारें विकसित दानों का बाह्य परत को कुछ समय तक खाती हैं, तत्पश्चात् ये दानों में छेदकर प्रवेश कर जाती हैं एवं भीतर ही भीतर दानों को खाकर क्षति पहुंचाती हैं। पूर्ण विकसित गिडार दाने पर नालीनुमा स्थान बनाकर दाने से बहार आ जाती है।

- **उकठा रोग :** यह रोग फ्यूजेरियम नामक कवक से फैलता है, जो पौधों में पानी एवं खाद्य पदार्थ के संचार को रोक देता हैं। इससे पत्तियां पीली पड़कर सूख जाती हैं और फिर पौधा सूख जाता हैं। इसकी जड़े सड़कर गहरे रंग की हो जाती हैं तथा छाल हटाने पर जड़ से लेकर तने की ऊंचाई तक काले रंग की धारियां पायी जाती हैं।

- **तना विगलन :** इस रोग में पौधा सूख जाता है, पर पौधों की जड़ें स्वस्थ रहती हैं। पौधों के तनों पर, भूमि सतह के पास या उसके ऊपर भूरे रंग के विक्षत हो जाते हैं, जो पौधे के तनों को चारों ओर से घेर लेते हैं। इससे ऊपर का भाग सूख जाता है। प्रायः तने के किनारे फूलकर फट जाते है।

- **बांझ रोग :** ग्रसित पौधों में पत्रियां अधिक लगती हैं और छोटी तथा हल्के रंग की हो जाती हैं। ग्रसित पौधों में फूल नहीं आते, जिससे फलियां तथा दाने नहीं बनते। यह रोग माईट द्वारा फैलता है। रोग नियंत्रण हेतु मिल्वीमेक्टिन दवा की एक मि.ली./लीटर पानी की दर से या प्रोपारगाईट की 3 मि.ली./लीटर पानी दर से घोल बनाकर 2–3 छिड़काव 10–12 दिनों के अंतराल पर करना चाहिऐ।

अरहर में समेकित रोग एवं कीट प्रबंधन

- ग्रीष्मकालीन गहरी जुताई करनी चाहिए, जिससे भूमि के अंदर उपस्थित कृमिकोष तथा हानिकारक रोगों के कारक आदि नष्ट हो जाएं।
- नीम की खली 2 क्विंटल/हेक्टर अथवा मूंगफली की खली का 10 क्विंटल/हेक्टर की दर से खेत की अन्तिम जुताई तक प्रयोग करना चाहिए।
- कीट एवं रोग अवरोधी/सहनशील प्रजातियां जैसे– नरेन्द्र अरहर 1, 2, मालवीय चमत्कार, पूसा 2002, मालवीय विकास, पूसा 9, आशा आदि की बुवाई
- बीज बोने से पहले शोधन कार्य ट्राईकोडर्मा पाउडर की 5–10 ग्राम/कि.ग्रा. बीज दर से अथवा कार्बेण्डाजिम + थीरम (2+1 ग्राम/कि.ग्रा.) से करना चाहिए। फाइटोफ्थोरा झुलसा रोग नियंत्रण हेतु बीजशोधन मेटलैक्जिल (एप्रान) की 6 ग्राम/कि.ग्रा. बीज दर से करना चाहिए।
- अरहर की बुआई मेड़ पर करनी चाहिए, जिससे तथा विगलन की समस्या से निजात पाया जा सके। रोगग्रसित पौधों को जड़ सहित उखाड़कर नष्ट कर देना चाहिए।
- बाजरे की ऊंची लाक वाली प्रजाति को अरहर के साथ उगाने से चिड़िया उन पर बैठकर कीटों का प्राकृतिक रूप से नियंत्रण करती है।
- अगेती व पिछेती बुआई की दशा में कीटों का प्रकोप अधिक होता है। अतः देर से पकने वाली प्रजाति की बुवाई जुलाई में तथा शीघ्र पकने वाली प्रजातियों की बुआई जून के मध्य में कर देनी चाहिए।
- फसल की बुआई संस्तुत दूरी (पंक्ति से पक्ति की दूरी 60–70 सें.मी. तथा पौध से पौध की दूरी 25 सें.मी.) पर करनी चाहिए।
- फलीभेदक कीट के लिए जब फसल 60–70 दिन (सितम्बर–अक्टूबर) की हो जाए तब फेरोमोन ट्रैप का उपयोग करना चाहिए। एक से दूसरे फेरोमोन ट्रैप की दूरी 30 मीटर होनी चाहिए तथा फसल से 1–2 फीट ऊपर रहे। 14 दिनों के अंतराल पर ल्योर आवश्यकता अनुसार बदलते रहना चाहिए तथा उस पर आकर्षित नर पौढ़ कीट को नष्ट कर देना चाहिए।
- अण्डे/पौधा या 1–2 सूंडी/पौधा से अधिक दिखायी देने पर नीम बीज पाउडर के 5 प्रतिशत घोल को एक प्रतिशत साबुन के घोल के साथ मिलाकर छिड़काव करना चाहिए।
- यदि कीट का नियंत्रण सही तरीके से नहीं हो पा रहा हो तो रासायनिक कीटनाशी जैसे–इंडोक्साकार्ब 15.8 प्रतिशत ई.सी. की एक मि.ली./लीटर पानी या स्पाइनोसैड 45 प्रतिशत एस.पी. एक मि.ली./2 लीटर पानी या इमामेक्टिन बेंजोएट 5 प्रतिशत एस.जी.की. एक मि.ली./2–3 लीटर पानी की दर से 50 प्रतिशत फूल आने तथा 50 प्रतिशत फली आने पर छिड़काव करना चाहिए।
- उकठा रोग अथवा तना विगलन की समस्या हो तो उस खेत में 3–4 वर्ष का फसल चक्र अपनाना चाहिए।

सोयाबीन की वैज्ञानिक खेती का महत्व

टीकम चन्द्र यादव, सुरेश कुमार जाट एवं पिंकी यादव
विवेकानंद ग्लोबल यूनिर्वसिटी, जयपुर, कृषि विश्वविद्यालय कोटा एवं महाराणा प्रताप कृषि एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय, उदयपुर

हमारे देश में लगभग 108.834 लाख हेक्टेयर क्षेत्र में सोयाबीन की खेती की जाती है और सोयाबीन का विश्व उत्पादन में भारत का पांचवा स्थान है। सोयाबीन में प्रोटीन, तेल एवं कार्बोहाइड्रेट 40–42, 20–22 एवं 25–31 प्रतिशत तथा लगभग 5 प्रतिशत मिनिरल क्रमशः पाया जाता है। सोयाबीन तेल से अनेक औद्यौगिक पदार्थ जैसे प्लाईवुड का सामान, बिटामिन, कागज, रबड़, टाईप राइडर का रिबन, साबुन, वार्निस, कीटनाशक रसायन, बिस्फोटक पदार्थ मोमबती, स्याही तथा सौन्दर्य प्रसाधन सामग्री का निर्माण किया जाता है एवं सोयाबीन से भोज्य पदार्थ जैसे दूध, दही, मख्खन, पनीर आदि बनाये जाते है ।

जलवायु व तापमान : सोयाबीन की फसल साधारण शीत से लेकर साधारण उष्ण जलवायु वाले क्षेत्रों में आसानी से उगाई जा सकती है। सोयाबीन के बीज और फूल को 15 डिग्री.से.ग्रे. तापमान में अच्छा अंकुरित होने में 7–10 दिन लगते है, जबकि 21–32 डिग्री से.ग्रे. तापमान पर ये केवल 3–4 दिन में ही अंकुरित हो जाते है । 50 डिग्री फारन्हईट तापमान पर पौधे की वृद्धि बहुत ही कम होती है। सोयाबीन के फूल आने के समय तापमान का विशेष प्रभाव पड़ता है। 23–25 डिग्री से.ग्रे. तक प्रति 10 डिग्री की वृद्धि होने पर फूलने का समय 2–3 दिन बढ़ जाता है। बहुत अधिक तापमान 38 डिग्री से.ग्रे. से अधिक होने पर ही सोयाबीन की वृद्धि विकास एवं बीज के गुणों पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। तापमान कम होने पर तेल की मात्रा घट जाती है। सोयाबीन की अधिकांश किस्मों में दिन लम्बा होने पर ही फूल आता है, फूलनें तक की अवधि फल की फलियाँ लगने तक की अवधि पकने की अवधि गांठो की संख्यां तथा पौधो की ऊंचाई पर दिन की लम्बाई का बहुत अधिक प्रभाव पड़ता है, दिन बड़ा होने पर उपरोक्त सभी अवस्थाओ की अवधि में वृद्धि हो जाती है। सोयाबीन में फूल तभी आता है, जब दिन की लम्बाई क्रांतिक अवधि से कम हो इसलिए इसको अल्प प्रकाश वाली फसल कहते है ।

नमी : सोयाबीन में पौधो के अच्छे अंकुरण के लिये अधिक नमी तथा लगातार कम नमी दोनों ही अवस्थाये हानिकारक है । अंकुरण के पश्चात कुछ समय तक नमी के अधिक या कम होने पर पौधों पर कोई विशेष हानिकारक प्रभाव नहीं पड़ता है। अच्छी फसल के लिये कम से कम 60–75 से.मी. वर्षा की आवश्यकता होती है यदि पुष्पीय कलियाँ विकसित होने से 2–4 सप्ताह पूर्व पानी की कमी हो जाय तो इसमें पौधों की वानस्पतिक वृद्धि घट जाती है। परिणामस्वरूप बहुत अधिक संख्या में फूल तथा कलियाँ गिर जाती है। फलियों के पकते समय वर्षा होनें पर फलियों पर अनेक बीमारियाँ लग जाती है जिससे वे सड़ जाती है तथा बीज की उत्पादकता घट जाती है अतः फलियों का पकने का समय वर्षा हानिकारक होता है ।

बीज का अंकुरण परिक्षण : बीज का अंकुरण परिक्षण करना अत्यंत आवश्यक है। अंकुरण परिक्षण हेतु पानी से भींगे टाट के टुकड़े में बीज के 100 दानों को लाइनों में अथवा अखबार की दोनों पन्नो को लेकर उसके आधे भाग को गीला कर बीज के 100 दाने लाइन में रखकर उसी से ढंक दे, रोजाना पानी का छिड़काव करें जिससे नमी बनी रहे । उक्त कार्य को 2–3 बार अलग–अलग टाट की बोरी पर करें 6–8 दिन बाद ऊपरी परत को उठाकर अंकुरित दानो की संख्यां को गिन ले। अंकुरित दानो का प्रतिशत 70 या इससे अधिक होनें पर ही बीज के रूप में उपयोग करें ।

मृदा एवं खेत की तैयारी : सोयाबीन की खेती सभी प्रकार की मृदाओं में अति अम्लीय, क्षारीय व रेतीली मृदाओं को छोडकर की जा सकती है। अतः सोयाबीन के लिए चिकनी भारी उपजाऊ, अच्छे जल निकास वाली मिट्टी उपयुक्त रहती है मृदा में अच्छा जल निकास तथा जैविक कार्बन की अच्छी मात्रा होनी चाहिए। मुख्य रूप से मटियार व काली मिट्टी में सोयाबीन का उत्पादन सफलता पूर्वक किया जा सकता है ।

गर्मी के मौसम में एक गहरी जुताई करनी चाहिए, जिससे भूमि में उपस्थित कीड़े, रोग एवं खरपतवार के बीजों की संख्या में कमी होती है तथा जल धारण की क्षमता में वृद्धि होती है। खेत से पूर्व बोई गई फसल के अवशेष व जड़ें निकाल देनी चाहिए एवं गोबर की अच्छी तरह से सडी हुई खाद या कम्पोस्ट 50–100 क्विटल प्रति हेक्टेयर खेत में मिला देना चाहिए। उसके बाद दो बार कल्टीवेटर से जुताई कर भूमि को भुर–भूरी कर खेत को समतल कर लें। खेत की अच्छी तैयारी अच्छे अंकुरण के लिए आवश्यक है।

बुआई का समय एवं अवधि : सोयाबीन की बुआई मानसून आने के साथ ही शुरू कर देना चाहिए, बुआई के समय भूमि के अंदर कम से कम 10 सेमी. की गहराई तक पर्याप्त नमी होनी चाहिए। सोयाबीन की बुआई का समय जून महीने के तीसरे सप्ताह से जुलाई माह के प्रथम सप्ताह तक सबसे उपयुक्त समय होता है । बुआई सीड ड्रिल या हल के साथ नाली बनाकर पंक्तियों में 30–45 सेमी. की दूरी पर करना चाहिए तथा पौधों की संख्या 4.50 लाख प्रति हेक्टेयर होनी चाहिए ।

बीज दर : उचित अंकुरण के लिए छोटे एवं मध्यम दानें वाली किस्मों का 75–80 किग्रा. बीज प्रति हेक्टेयर एवं मोटे दाने वाली बिजाई के लिए किस्मों का 100 किग्रा. बीज प्रति हेक्टेयर की दर से बुआई करनी चाहिए । खरीफ में 75–80 किग्रा. बीज प्रति हेक्टेयर की दर से प्रयोग करें ।

बीज उपचार : सोयाबीन को रोगों से ग्रसित होने से बचाने के लिए बीजों को बोनें से पहले फफूंद नाशक दवाओं से बीजोपचार अवश्य कर लेना चाहिए। इसके लिए बीज को थाइरम या कार्बेन्डाजिम, 2–3 ग्राम प्रति किग्रा. बीज उपचार करनें से इन रोगों से बचाव हो जाता है जैसे– बीज विगलन, पौध अंगमारी एवं पत्ती धब्बा आदि।

जीवाणु कल्चर से बीज उपचार : रसायनिक बीज उपचार के पश्चात बीजो को जीवाणु कल्चर से उपचारित करना चाहिए। इसके लिए एक लीटर गर्म पानी में 250 ग्रा. गुड का घोल बनाएं एवं ठंडा होने के बाद 500 ग्राम राइजोबियम कल्चर एवं 500 ग्राम पी.एस.बी. कल्चर प्रति हेक्टेयर की दर से मिलायें। कल्चर मिले घोल को बीजों में हल्के हाथ से मिलाये फिर छाया में सुखाकर तत्काल बुआई कर देना चाहिए ।

सोयाबीन की उन्नत किस्में : सोयाबीन की खेती का प्रारंभ काली तुर नामक किस्म से हुई थी। जिसके दाने काले रंग के थे, इसके पश्चात पीले दाने वाली टी–9 किस्म प्रकाश में आई इसकी सफलता के बाद अंकुर,अलंकार, शिलाजीत, पंजाब–1 किस्में किसानों द्वारा पसंद की गई। बाद में गौरव, मोनेटा, एम.ए.सी.एम.–13, मैक्स–58, पूसा–16, 20, 40, जे.एस. 335, जे.एस. 95–60, जे.एस. 20–34 एवं जे.एस. 20–29 आदि किस्में प्रचलित हुई। इस प्रकार सोयाबीन की प्रमुख किस्में एवं विशेषताएं निम्न है।

रासायनिक उर्वरक प्रयोग महत्व एवं प्रयोग विधि : रासायनिक उर्वरक 20:40:40:40 किग्रा. एन.पी.के.एस. प्रति हेक्टेयर की दर से प्रयोग करें एवं बुवाई के समय 75 किग्रा. डी.ए.पी. तथा 72 किग्रा. म्यूरेट आफ पोटाश प्रति हेक्टेयर की दर से खेत में मिलाकर बुआई करें तथा 40 किग्रा. सल्फर प्रति हेक्टेयर खेत में दें जिससे अधिक उपज प्राप्त होती है ।

बुआई की बिधियाँ : सोयाबीन की बुआई हमेशा कतारों में करनी चाहिए बीज एवं खाद को अलग–अलग डालना चाहिए, जिससे अंकुरण प्रभावित नहीं होगा साथ ही बीज की गहराई 3–4 सेमी. से अधिक नहीं रखना चाहिए । साधारणत: सोयाबीन के बीज की बुआई निम्न विधियों से करते है।

- **छिटकवा विधि:** कुछ क्षेत्रों में किसान सोयाबीन का बीज एवं खाद मिलाकर छिड़काव करने के बाद डिस्क हैरो चलाकर पाटा देते हैं। यह सोयाबीन बोने की अच्छी विधि नहीं मानी जाती है क्यूकि इसमें निम्न हानियाँ होती है एवं उत्पादन में गिरावट आती है ।
- बीज की मात्रा अधिक लगती है ।
- वर्षा का जल मिट्टी सोख नही पाती है, क्योकि पाटा लगा देने से पानी खेत से बहकर बाहर चला जाता है ।
- मिट्टी में नमी का संरक्षण नहीं हो पाने से सूखे के दौरान फसल पर विपरीत प्रभाव पड़ता है ।
- निराई–गुड़ाई एवं कीटनाशक छिड़काव में अवरोध उत्पन्न होता है ।

2. **कतार से बुआई विधि :** सोयाबीन का बीज हमेशा कतारों में लाइन से लाइन 45 सेमी. तथा पौधा से पौधा 4–5 सेमी. की दूरी में बोनी चाहिए। यह विधि सबसे सरल, सस्ती एवं उपयुक्त विधि है इस विधि से निम्न लाभ है।
- बीज सही जगह पर पड़ता है और अंकुरण सही होता है । पौधों की संख्या उचित होती है ।
- बीज की मात्रा कम लगती है ।
- खरपतवार नियन्त्रण एवं पौध संरक्षण में सुविधा होती है ।
- कुंड में पानी भरने से मिट्टी नमी सोख लेती है इस कारण लम्बे समय तक वर्षा न होने पर भी फसल पर कोई विपरीत प्रभाव नहीं पड़ता है ।

3. **मेड नाली विधि :** यह सोयाबीन की बुआई की इस विधि में बीजाई मेड़ों पर की जाती है तथा दो मेड़ो के बीच की दूरी 15 सेमी. गहरी नाली बनाई जाती है और मिट्टी को फसल के दोनों तरफ कर दिया जाता है, इस विधि के निम्न लाभ है।
- इस विधि से खरीफ मौसम में फसल को अल्प वर्षा के समय नमी की कमी महसूस नही होती है ।
- बीजों की बुआई मेड़ों पर होने के कारण अति वर्षा तथा तेज वर्षा के

तालिका : 1 उन्नत किस्में एवं उनकी विशेषताएं

क्र.सं.	किस्मों का नाम	पकने की अवधि	उपज (क्विं./हे.)
1.	पी.के. 472	110–115 दिन	25–30
2.	जे.एस. 335	100–105 दिन	25–30
3.	मैक्स–450	100–105 दिन	25–30
4.	एन.आर.सी. 37 (अहिल्या–4)	100–105 दिन	25–30
5.	प्रताप सोया.1	90–95 दिन	25–30
6.	जे.एस.93–05	90–95 दिन	25–30
7.	जे.एस. 97–52	98–102 दिन	25–30
8.	जे.एस.95–60	80–85 दिन	18–20
9.	प्रताप सोया. 2	90–95 दिन	25–30
10.	आर के एस. 24	98–100 दिन	25–30
11.	आर के एस. 45	90–95 दिन	25–30
12.	जे.एस. 20–34	90 दिन	20–25
13.	जे.एस.20–29	95 दिन	20–25
14.	आर के एस.113	98–102 दिन	22–25
15.	एन.आर.सी. 127	97–101 दिन	20–23

समय पौधों के गिरने की सम्भावना नही होती है ।

- अल्प वर्षा तथा अधिक वर्षा में लम्बे अंतराल होने से सोयाबीन की फसल प्रभावित नही होती है ।
- अति वर्षा के समय अतिरिक्त वर्षा जल इन नालियों से खेत के बाहर निकल जाता है ।

सिचाई एवं जल निकास प्रबन्धन : सोयाबीन खरीफ की फसल में सिचाई की आवश्यकता नही पड़ती है अधिक दिनों तक वर्षा नही होने पर सिचाई की आवश्यकता पड़ सकती है। सोयाबीन में फूल एवं फलियाँ लगते समय क्रांतिक अवस्था होती है, इस अवस्था में वर्षा नही होने पर सिचाई आवश्यक होती है अधिक वर्षा भी फसल के लिए नुकसानदायक होती है इसलिए जल निकास का उचित प्रबन्धन करना अति आवश्यक हो जाता है ।

खरपतवार प्रबंधन : सोयाबीन का पौधा प्रारंभिक अवस्था में धीमी गति से वृद्धि करता है इसलिए खेत में तीव्र गति से बढ़ने वाले खरपतवार से 25–70 प्रतिशत तक नुकसान होता है । अत: बुआई के 40–45 दिन तक खेत में खरपतवार को बढ़ने से रोका जाय, इसके लिए बुआई के 20 दिन तथा 40 दिन बाद दो बार निराई–गुड़ाई करके खेत से खरपतवार को निकालते रहना चाहिए ।

रसायनिक विधि से खरपतवार नियन्त्रण: बुआई के तुरंत बाद व सोयाबीन के अंकुरण के पूर्व में काम में आने वाले मेटालोक्लोर 50 ई.सी. 2 लीटर या पेंडिमेथालिन 30 ई.सी. 2.5 लीटर प्रति हेक्टेयर 700 लीटर पानी में छिड़काव करना चाहिए।

खड़ी फसल में उपयोग की जाने वाली खरपतवारनाशी : संकरी पत्ते वाली खरपतवारों के नियन्त्रण के लिए बुआई के 15–30 दिन बाद क्विजालोफास इथाइल 5 प्रतिशत ई.सी. 1 लीटर / हेक्टेयर का खड़ी फसल में 700 लीटर पानी में घोलकर फ्लेट फेन नोजल से स्प्रे करना चाहिए।

1. चौड़ी पती वाले खरपतवार नियंत्रण के लिए क्लोरोम्यूरान ईथाइल 30 ग्राम प्रति हेक्टेयर का स्प्रे बुआई के 15–20 दिन बाद करें ।
2. दोनों प्रकार के खरपतवारों के नियंत्रण के लिए इमेजाथापायर 10 एस.एल. 720 मि.ली.को 700 लीटर पानी में घोलकर 2–3 पत्ती या 3 इंच खरपतवार की अवस्था में स्प्रे करें ।

समेकित रोग प्रबंधन

समेकित रोग प्रबंधन वह पद्धति है जिसमें सभी उपलब्ध रोग नियंत्रण के निम्न तरीकों एकीकृत करके रोग का निदान किया जाता है।

- गर्मी में गहरी जुताई
- संतुलित उवर्रक प्रबंधन
- सही किस्मों का चयन
- बुआई का समय
- बीज दर व पौध संख्या
- जल प्रबंधन
- रोग ग्रस्त फसल अवशेषों को नष्ट करना
- खरपतवार नियंत्रण
- फसल चक्र व अंतरवर्तीय फसल
- प्रतिरोधी किस्मों का प्रयोग

पत्ती धब्बा एवं ब्लाइट: नियंत्रण हेतु कार्बेन्डाजिम या थायोफिनेट मिथाईल 0.5% (50 ग्रा./100 ली. पानी) के घोल का 35–40 दिन में छिड़काव करें ।

बैक्टेरियल रोग : नियंत्रण हेतु रोग रोधी किस्में जैसे एन.आर.सी.–37 का प्रयोग करें । रोग का लक्षण दिखाई देने पर कासुगामाइसिन का 0.2% (2 ग्राम/ली.) घोल का छिड़काव करें ।

गेरूआ : यह एक फफूंदजनित रोग है जो प्राय: फूल की अवस्था में देखा जाता है जिसके अन्तर्गत छोटे–छोटे सूई के नोक के आकार के मटमेले भूरे व लाल भूरे सतह से उभरे हुए धब्बे के रूप में पत्तीयों की निचली सतह पर समूह के रूप में पाये जाते है । धब्बों के चारों ओर पीला रंग होता है । पत्तीयों को हिलाने से भूरे रंग का पाउडर निकलता है ।

- रोग रोधी किस्मों का प्रयोग करें ।
- रसायनिक नियंत्रण के अन्तर्गत हेक्साकोनाजोल या प्रोपीकोनाजोल 800 मि.ली./हे. का छिड़काव करें ।

चारकोल रोट : यह एक फफूंदजनित रोग है। इस बीमारी से पौधे की जड़े सड़ कर सूख जाती है। पौधे के तने का जमीन से ऊपरी हिस्सा लाल भूरे रंग का हो जाता है। पत्तीयां पीली पड़ कर पौधे मुरझा जाते हैं। रोग ग्रसित तने व जड़ के हिस्सों के बाहरी आवरण में असंख्य छोटे–छोटे काले रंग के स्केलेरोशिया दिखाई देते हैं ।

- रोग सहनशील किस्मों का उपयोग करें ।
- रसायनिक नियंत्रण के अन्तर्गत थायरम या कार्बोक्सीन 21 में 3 ग्राम या ट्रायकोडर्मा विरिडी 5 ग्राम /किलो बीज के दर से उपचारित करें।

ऐन्थ्रेक्नोज व फली झुलसन: यह एक बीज एवं मृदा जनित रोग है। सोयाबीन में फूल आने की अवस्था में तने, पर्णवृन्त व फली पर लाल से गहरे भूरे रंग के अनियमित आकार के धब्बे दिखाई देते है। बाद में यह धब्बे फफूंद की काली सरंचनाओं व छोटे कांटे जैसी संरचनाओं से भर जाते है। पत्तीयों पर शिराओं का पीला–भूरा होना, मुड़ना एवं झड़ना इस बीमारी के लक्षण है।

- रोग सहनशील किस्मों का उपयोग करें ।
- बीज को थायरम तथा कार्बोक्सीन या केप्टान 3 ग्राम /कि.ग्रा. बीज केदर से उपचारित कर बुवाई करें ।
- रोग का लक्षण दिखाई देने पर मैन्कोजेब 2 ग्रा./ली. का छिड़काव करें ।

❋❋❋

सोयाबीन फसल के प्रमुख कीट एवं रोगों का प्रबंधन कर किसान बढ़ाये आय

बी.के. पाटीदार, सी.बी. मीना, डी.एस. मीना, बी.एल. मीना एवं सुशीला कलवानियॉ
कृषि अनुसंधान केन्द्र, उम्मेदगंज, कोटा एवं कृषि महाविद्यालय, उम्मेदगंज, कोटा, कृषि विश्वविद्यालय, कोटा

सोयाबीन भारत वर्ष की एक महत्वपूर्ण तिलहनी फसल के रूप में स्थापित हो गई है। यह भले ही भारतीय फसल नहीं है लेकिन बावजूद इसके भारत की प्रमुख फसल का दर्जा सोयाबीन को प्राप्त हैं। इसमें लगभग 40 प्रतिशत प्रोटीन, 20 प्रतिशत तेल एवं औषधीय गुण पाये जाने के कारण यह एक चमत्कारिक फसल के रूप में जानी जाती है। यद्यपि यह एक दलहनी फसल है, लेकिन हमारे देश में तेल की आवश्यकता को देखते हुये एवं सोयाबीन में तेल की प्रचुरता के कारण इसको तिलहन वर्ग में रखा गया है। देश मे कुपोषण को दूर करने के लिये सोयाबीन का मिश्रण कर आहार की पौष्टिकता को बढ़ाया जा सकता है। सोयाबीन से दूध, दही, मक्खन एवं पनीर बनाया जा सकता है। रासायनिक विश्लेषण के अनुसार इसका दूध गाय के दूध के समान माना जाता है। इसके तेल में संतृप्त वसा अम्ल कम होने के कारण इसका तेल हृदय रोगियों के लिये विशेष लाभदायक है। तेल निकालने के बाद इसकी खली में भी अच्छी मात्रा में प्रोटीन व खनिज लवण शेष रहते हैं। अतः यह जानवरों को खिलाने व खाद के रूप में भी उपयोगी पायी गयी है। राजस्थान का सोयाबीन उत्पादन में मध्य प्रदेश एवं महाराष्ट्र के बाद तीसरा स्थान है। राजस्थान में सोयाबीन की खेती मुख्यतः दक्षिणी–पूर्वी क्षेत्र में होती है। कोटा, झालावाड़, बारां एवं बूंदी जिलों के अतिरिक्त चित्तौड़गढ़ एवं प्रतापगढ़ जिले में इसकी खेती व्यापक रूप से की जाती है। सोयाबीन की फसल पर कीट एवं रोगों के आक्रमण से 5 से 50 प्रतिशत तक पैदावार में कमी आ जाती है। अतः किसान समय रहते कीट व रोग प्रबंधन के उचित तरीके अपनाकर अच्छा उत्पादन ले सकते हैं।

प्रमुख कीट एवं प्रबंधन

सोयाबीन तना मक्खी: इस कीट की मेगट अवस्था ही हानिकारक होती है। इसे स्टेम फ्लाई भी कहते हैं। इसकी इल्ली हल्के पीले रंग की व मक्खी काले चमकीले रंग की होती है। इसका प्रकोप पौधे सह नहीं पाते, मर जाते हैं या दानों की संख्या व वजन कम हो जाता है। वयस्क मक्खी जून से जुलाई माह में अधिक सक्रिय रहती है। इसके ग्रसित तनों को चीरने पर तना खोखला दिखाई देता है मध्य भाग गहरा लाल या भूरे रंग का हो जाता है।नव विकसित मेगट पत्तियों के डठंलों से तने के अंदर घुसती है। ग्रसित पौधों में प्रारंभ में पत्तियों का ऊपरी भाग सूख जाता है।

नियंत्रण: एक ही खेत में लगातार सोयाबीन की फसल नहीं ले। फसल चक्र अपनाने से इस कीट की संख्या में प्रभावी रूप से कमी देखी जा सकती है। क्यूनालफॉस 25 ई.सी. 800 मि.ली. 500–600 लीटर पानी में घोलकर प्रति हे. की दर से छिड़काव करें। कटाई के पश्चात फसल के शेष डठंलों को जलाकर नष्ट करें। लाईट ट्रेप का उपयोग करना चाहिये। जे एस 20–34, आर.के.एस.–18 व आर.के.एस.–113 जैसी मध्यम प्रतिरोधी से सहनशील किस्मों का उपयोग करना चाहिए।

गर्डल बीटल: फसल थोड़ी–सी बड़ी होने पर गर्डल बीटल के प्रकोप की आशंका होती है। इसे चक्र भृंग भी कहा जाता है। इससे पौधे का विकास रुक जाता है तथा जहॉ पर कीट आक्रमण करता है पौधे का वह भाग टूट कर सूख जाता है। फसल कटने के बाद भी यह भाग खेत में पड़ा रहता है। अगले वर्ष सोयाबीन बोने पर पुनः प्रकोप हो जाता है। यह कीट फसल बुआई के दिन से लेकर पकाव की अवस्था तक सक्रिय रहकर आक्रमण करता हैं। मादा वयस्क द्वारा अण्ड निक्षेपण हेतु मुख्य तने पर सामांतर चक्र या गर्डल बनाये जाते है उस स्थान पर ऊपर का भाग सूखकर मुरझा जाता है इससे इस कीट की पहचान खेत में की जा सकती है।

नियंत्रण: ग्रीष्मकालीन गहरी जुताई करें जिसमें भूमि में सुषुप्तावस्था में पड़ी इल्लियां भूमि की सतह पर आ जाये ओर धूप के कारण नष्ट हो जाये। फसल के शेष अवशेष को जलाकर नष्ट करें ताकि छुपी हुई शंखीयों को नष्ट किया जा सके। सहिष्णु किस्मे जैसे जेएस 93.05 या मध्यम प्रतिरोधी प्रताप राज– 24 (आर.के.एस. 24) जैसी किस्मों का उपयोग करना चाहिये। रासायनिक नियंत्रण हेतु डायमिथोएट 30 ई सी 1000 मि. ली. प्रति हे. के हिसाब से छिड़काव करें। प्रकोप की तीव्रता अधिक होने पर थायोक्लोप्रिड 21.7 एस.सी. 750 मि.ली. दवा की प्रति हैक्टर की दर से 400–600 लीटर पानी घोलकर छिड़काव करें।

सेमी लूपर (अर्द्ध कुण्डलाकार इल्ली): सेमी लूपर सोयाबीन की फसल में अगस्त से सितम्बर के माह में अधिक आक्रमण करते है। सेमी लूपर पौधों की पत्तियों को चट कर जाती है जिससे पत्तिया जाली धार हो जाती है तथा पौधों की बढ़वार

रुक जाती है जिस कारण से उपज में भारी कमी हो जाती है।

ग्रीन सेमी लूपर (हरी अर्द्ध कुण्डलाकार इल्लियॉ): इस कीट का प्रकोप फसल उगने के 15–20 दिन बाद से ही शुरु हो जाता है, अगस्त–सितम्बर तक रहता हैं। अर्धकुण्डलक इल्लियॉ, सोयाबीन की पत्ती खाने वाली इल्लियों में प्रमुख हैं। ये सभी इल्लियॉ प्रारम्भ पत्तियों पर बड़े–बड़े अनियमित छेद कर देती हैं। अधिक प्रकोप होने पर पत्तियों पर शिराएं मात्र ही शेष रह जाती हैं जिसके पश्चात् इनका आक्रमण कलिकाओं, फूलों एवं नव–विकसित फलियों पर प्रारंभ हो जाता हैं। क्रायसोडेक्सिस एक्यूटा जाति की इल्ली हरे रंग की होती है जिसके पृष्ठ भाग पर एक लम्बवत् पीली धारी एवं शरीर के दोनों ओर एक–एक सफेद धारी होती हैं। शरीर का पिछला भाग, अगले भाग से अधिक मोटा होता है। डायक्रीसिया ऑरीचैल्सिया जाति की इल्ली भी क्रायसोडेक्सिस एक्यूटा जैसी होती है, किन्तु इसके शरीर पर कुछ रोऐं स्पष्ट देखे जा सकते हैं।

नियंत्रण: जैविक नियंत्रण में इल्लियों की शुरूआती अवस्था में बैसिलस थुरिजिंएसिस 1 ली. प्रति हे.के हिसाब से छिड़काव करें। प्रोफेनोफॉस 50 ई.सी. 1.25 लीटर या क्यूनालफॉस 20 ई.सी. 1.5 लीटर प्रति हेक्टर या डाइफ्लूबेन्जुरान 25 डब्ल्यू.पी. 350 ग्राम या इण्डोक्साकार्ब 15.8 ई.सी. 0.3 लीटर या क्लोरएन्ट्रानीलीप्रोल 18.5 एस.सी. 100 मि.ली.प्रति हे.के हिसाब से छिड़काव करें। बायोकीटनाशक (बी.टी.) 127 एस.सी. 3 मि.ली./लीटर पानी की दर से छिड़काव करें। सोयाबीन में कीटों के प्रकोप के नियंत्रण हेतु क्लोरोपायरीफॉस 20 ई.सी. 1.5 लीटर प्रति हेक्टर आर्थिक दृष्टि से सबसे उपयुक्त हैं। सहिष्णु किस्मे जैसे जे एस 20–29, जे एस 95–60, जे एस 20–34, आर.के.एस. 113, आर.के.एस. 45 इत्यादि की बुवाई उपयुक्त रहती हैं।

तम्बाकू की इल्ली: कीट की सूण्डी फसल को नुकसान पहुंचाती है। नवजात इल्लियाँ समूह में रहकर पत्तियों का पर्ण हरित खुरचकर खाती है जिससे ग्रसित पत्तियाँ जालीदार हो जाती है जो की दूर से ही देख कर पहचानी जा सकती है । पूर्ण विकसित इल्ली पत्ती, कलि एवं फली तक को नुकसान करती है । प्रारंभ में झुण्ड में सूण्डियों एक साथ पत्तियों को काटने व चबाने के मुखांगों से काटकर क्षति पहुंचाती है।

नियंत्रण: फसल कटने के बाद गर्मी में गहरी जुताई करें। प्रकाश पॉश एंव फेरोमान पॉश का प्रयोग करना चाहिए। ताकि वयस्क कीटो को नष्ट किया जा सके। अण्डों के गुच्छों को पत्तियों के सहित तोड़कर नष्ट कर देना चाहिये। तम्बाकू लट के प्रति मध्यम प्रतिरोधी किस्मों जैसे आर.के.एस. 18, आर.के.एस. 24, आर.के.एस. 45 इत्यादि की बुवाई की जानी चाहिए। नियंत्रण के लिये न्यूक्लियर पोली हैड्रोसिस वायरस (एन.पी.वी.) का प्रयोग करना चाहिए। क्लोरोपायरिफॉस 20 ई.सी. 1.5 लीटर या इनडोक्सकर्ब 14.8 ई.सी. 300 मि.ली. या इमामेक्टिन बेन्जोएट 5 एस.जी. 0.18 किग्रा या क्लोरेंटरेनीलीप्रोल 18.5 एस.सी. 100 मि. ली. प्रति हेक्टर के हिसाब से छिड़काव करें।

रोएंदार इल्ली (बिहार हेयरी कैटरपिलर): यह इल्ली जून से अगस्त तक अरण्डी के पौधें पर तथा सितम्बर से अक्टूबर तक सोयाबीन पर आक्रमण करता हैं। फली लगने के समय काली, लाल व भरे रंग के बालों वाली लटें पत्तियों को खाकर छलनी कर देती हैं तथा पत्तियों में नसों का जाल मात्र रह जाता हैं। शुरु में प्रकोप एक–दो स्थान पर केन्द्रित रहता है जहां मादा 500–600 अण्डे देती है। बाद में लटें चारों ओर फैल कर आकार में बढ़ते हुए पत्तियों को खाती रहती है जिसका विपरीत प्रभाव उपज पर पड़ता है। पत्तियाँ सफेद तथा नसे दूर से दिखाई देती हैं। छोटी इल्लियॉ मटमैले पीले रंग की होती है जो होने पर लाल–भूरे रंग की हो जाती हैं। इल्लियों के शरीर पर बड़े–बड़े रोम सदृश्य बाल होते हैं।

नियंत्रण: फसल कटने के बाद गर्मी में गहरी जुताई करें। प्रकाश पॉश एंव फेरोमान पॉश का प्रयोग करना चाहिए। ताकि वयस्क कीटों को नष्ट किया जा सके। अण्डों के गुच्छों को पत्तियों के सहित तोड़कर नष्ट कर देना चाहिये। प्रथमावस्था सूंडी दिखाई देने पर एस. ओ. एन.पी.वी. की 250 एल.ई. प्रति हैक्टर की दर से 7–8 दिन के अन्तराल पर छिड़काव करें। रासायनिक नियंत्रण हेतु क्यूनालफॉस 1.5% डस्ट 20–25 किलो प्रति हैक्टर की दर से भुरकाव करें। क्लोरोपायरिफॉस 20 ई.सी. 1.5 लीटर या प्रोफेनोफॉस 50 ई.सी. 1.5 लीटर या फ्लूबेनडाइएमाइड 39.35 एस.सी. 180 मि.ली. प्रति हैक्टर की दर से छिड़काव करें। रोएंदार लट के प्रति मध्यम प्रतिरोधी से सहनशील किस्मों जैसे आर.के.एस. 18, आर.के.एस. 24, आर.के.एस. 45, आर.के.एस. 113, जे एस 20–34, जे एस 20–29 इत्यादि की बुवाई की जानी चाहिए।

प्रमुख रोग एवं प्रबंधन: सोयाबीन की फसल में विभिन्न रोग कारकों जैसे फफूंद, जीवाणु, वाइरस, माइक्राप्लोज्मा आदि द्वारा कई प्रकार के रोग उत्पन्न किये जाते हैं। जिससे फसल की गुणवत्ता के साथ–साथ उत्पादन पर भी विपरीत प्रभाव पड़ता है।

बीज सडन रोग: यह रोग पिथियम अल्टिमम नामक कवक द्वारा होता है। इस रोग के आक्रमण से अंकुरण में 50 प्रतिशत तक कमी हो सकती है। इस रोग के प्रकोप से बीज जमीन के अन्दर ही सड़ जाता है और बीज के ऊपर नीली, हरी एवं काली रंग की कवक दिखाई देता है। रोग के संक्रमण

से बीज नरम होकर पिला–पिला हो जाता है। जिसे दबाने पर गाढा पीला द्रव निकलता है।

प्रबंधन/नियंत्रण : इसके रोकथाम के लिए कम से कम दो से तीन वर्ष का फसल चक्र अपनायें। बुवाई के समय छोटे आकार के सिकुड़े हुए बीजों को निकाल देवें। बीजों को बुवाई से पूर्व कार्बेण्डाजिम 50 डब्ल्यू.पी. एवं थायरम 75 डी.एस. (1:2) 3 ग्राम मात्रा प्रति किलोग्राम बीज की दर से उपचारित करें।

तना गलन रोग : सोयाबीन के इस रोग का जनक स्केलेरोशिया सेल्फाई नामक फफूंद हाती हैं। इस रोग से अंकुरण में 40 प्रतिशत तक तथा उत्पादन में 55–60 प्रतिशत तक कमी पाई जाती है। इस रोग के कारण पौधे अचानक मुरझाकर सूख जाते है। सामान्यतया यह रोग अंकुरण से फूल बनने की अवस्था तक अधिक नुकसान पहुँचाता हैं। रोग ग्रसित पौधों को उखाड़कर देखने पर भूमि के पास वाले तने पर सफेद रंग की फफूंद वृद्धि दिखाई देती है तथा सक्रंमित तने को चीरने पर काले रंग के राई के समान स्कलेरियोशिया दिखाई देना इस रोग की पहचान के मुख्य लक्षण होता है।

प्रबंधन/नियंत्रण : इसके प्रबंधन हेतु रोग ग्रसित खेतों में कम से कम दो से तीन वर्ष का फसल चक्र अपनायें तथा सोयाबीन की बजाय मक्का या ज्वार की फसल लगायें। ग्रीष्मकालीन गहरी जुताई करें। रोग ग्रसित खेत में सोयाबीन कटाई के बाद बचे हुये अवशेषों को जला कर नष्ट कर देवें। स्वस्थ, साफ एवं प्रमाणित बीजों को ही बुवाई में काम लेवें। बुवाई से पूर्व बीजों को कार्बोक्सिन 75 डब्ल्यू.पी. 2 ग्राम प्रति कि.ग्रा. बीजों के हिसाब से बीजोपचार करें।

जड़ गलन रोग : यह रोग राइजोक्टोनियॉ सोलेनाई नामक फफूंद से होता है। इस रोग से सोयाबीन की फसल को 50 प्रतिशत तक उपज में नुकसान हाता है। इस रोग के लक्षण अधिकतर फूल से फली बनने की अवस्था तक देखे जा सकते है। इस रोग के प्रकोप से खेत में जगह–जगह पर पौधे सूखकर चकते बन जाते है। सूखे पौधों की जड़ों पर लाल भूरे रंग के चकते स्पष्ट रुप से देखे जा सकते है, तथा जमीन के पास वाले तने पर भी फफूंद दिखाई देने लगती है।

प्रबंधन/नियंत्रण : इसके नियंत्रण के लिए ग्रीष्मकालीन खेत की गहरी जुताई करें। रोग ग्रसित पौधों को उखाड़कर जला देवें। फूल बनने से फली बनने तक की अवस्था में लम्बे समय तक पानी की कमी न देवें। बीजों को बुवाई से पहले थाइरम+कार्बेण्डाजिम (2:1) की 3 ग्राम प्रति कि.ग्रा. बीज की दर से बीजोपचार करें। खड़ी फसल में रोग के लक्षण दिखाई देने पर मैन्कोजेब या कॉपर ऑक्सीक्लोराइड 3 ग्राम प्रति लीटर पानी या कार्बेण्डाजिम 1–1.5 ग्राम प्रति लीटर पानी की दर से घोल बनाकर छिड़काव करें। आवश्यकता पड़ने पर 10–15 दिन के अन्तराल बाद छिड़काव पुनः दोहरावें।

पत्ती धब्बा या बैंगनी बीज रोग : यह रोग सर्कोस्पोरा किकुची नामक फफूंदी द्वारा उत्पन्न हाता हैं। इस रोग से सोयाबीन की गुणवत्ता में गिरावट के साथ–साथ उपज में भी 15–30 प्रतिशत तक की कमी देखी गई है। इससे सामान्यतः फली बनने की अवस्था में अधिक नुकसान होता है। इस रोग के प्रमुख लखण पत्ती पर गोल, कोणीय या अनियमित आकार के कांसे जैसे भूरे रंग के धब्बे बन जाते हैं। जो छूने पर खुरदरे तथा दिखने में चमड़े जैसे प्रतीत होते है। रोग से ग्रसित बीजों का रंग बैंगनी सा हो जाता हैं।

प्रबंधन/नियंत्रण : इसके प्रबंधन हेतु रोग ग्रसित खेत में सोयाबीन फसल की कटाई करने के बाद फसल अवशेष को जलाकर नष्ट कर दें। बुवाई से पूर्व बीजों को 3 ग्राम थायरम या थायरम 2 ग्राम+कार्बेण्डाजिम 1 ग्राम प्रति कि.ग्रा. बीज या कार्बेण्डाजिम 2 ग्राम प्रति कि.ग्रा. बीज की दर से बीजोपचार करें। खड़ी फसल पर रोग के लक्षण दिखाई देने पर मैन्कोजेब 0.2 प्रतिशत या कार्बेण्डाजिम 0.1 प्रतिशत या टॉपसिन एम 0.1 प्रतिशत का घोल बनाकर छिड़काव करें।

भयामवर्ण/एन्थ्रेकनोज अंगमारी तथा फली झुलसा रोग : इस रोग का रोगजनक कालेटाट्राइकम डिमेटियम नामक फफूँद होती है जो अधिक तापक्रम व अधिक नमी होने पर प्रकट होता है। इस रोग द्वारा फसल की उपज में 18–25 प्रतिशत तक तथा रोग की तीव्रता होने पर 100 प्रतिशत तक नुकसान हो सकता है। इस रोग के लक्षण सबसे पहले फूल बनने की अवस्था में तने के उस भाग पर नजर आते है, जो जमीन तथा प्रथम गांठ के बीच होता है। संक्रमित तने के इस भाग पर हल्के भूरे चकते नजर आते हैं था फफूँद की सफेद रंग की वृद्धि देखी जा सकती है। सोयाबीन में फूल आने के समय तने, पर्णवृंत व फली पर लाल से गहरे भूरे रंग के किसी भी आकार के धब्बे दिखाई देते हैं और रोग के बाद की अवस्था में तने पर काले रंग की एसरबुलाई भी देखी जा सकती है। रोग ग्रसित बीज को बोने से पौधे जमीन से बाहर आने के पहले या तुरंत बाद में मर जाते हैं।

प्रबंधन/नियंत्रण : इसके प्रबंधन के लिए रोग ग्रसित खेत में सोयाबीन की फसल काटने के बाद बचे हुए अवशेषों को जलाकर नष्ट कर देवें। ग्रीष्मकालीन खेत की गहरी जुताई करें। स्वस्थ एवं प्रमाणित बीजों को बुवाई के लिए काम में लेवें। खेत मे जगह–जगह पर पानी इक्ट्ठा न होने देवें एवं खेत में जल निकास की उचित व्यवस्था होनी चाहिए। रोग ग्रसित पौधों को खेत से उखाड.कर नष्ट कर देवें। बीजों का बुवाई से पूर्व थायरम 2 ग्राम्+कार्बेण्डाजिम 1 ग्राम प्रति कि.ग्रा. बीज की दर से बीजोपचार करें। खड़ी फसल में रोग के लक्षण दिखाई देने पर मैन्कोजेब 0.2 प्रतिशत या कार्बेण्डाजिम 0.1 प्रतिशत या टॉपसिन एम 0.1 प्रतिशत या प्रोपिकोनाजोल 25 ई.सी. 0.1 प्रतिशत के घोल का छिड़काव करें।

चारकोल सड़न रोग/चारकोल रॉट : यह रोग मक्रोफोमिना फैसिओलीना नामक फफूँद द्वारा उत्पन्न होता है। इस रोग से फसल में 70 प्रतिशत तक हानि हो जाती है। इस रोग के लक्षण पौधें की जड़ो तथा तनों के भागों का रंग कोयले के समान धूसर काला दिखाई देता है। रोग

ग्रसित जड़ों व तनों को चीर कर देखने पर उन पर काली धारियाँ दिखाई देती है तथा कभी–कभी धब्बों पर फफूँद में पिक्निडीया भी दिखाई देते है। यह रोग मिट्टी में नमी की कमी एवं गर्म वातावरण में होता है, जो प्रारंभिक अवस्था में पौधें की जड़ों में सड़न पैदा करने के साथ नवजात पौधों को सुखा कर मार देता है। इसके अलावा तने का जमीन से उपर वाला हिस्सा सूख जाता है तथा पत्तियाँ सूख कर उसी में लटकी रहती है एवं पौधे मुरझाये से दिखते है।

प्रबंधन/नियंत्रण: इसके नियंत्रण के लिए रोगग्रसित खेतों में फसल चक्र अपनाए तथा कपास की मिश्रित खेती करें। फसल को पर्याप्त खाद एवं पानी देते रहें जिससे फसल रोग सहन करने की क्षमता बनाऐं रखें। बुवाई से पूर्व बीजों को थायरम 3 ग्राम या थायरम 2 ग्राम+कार्बेण्डाजिम 1 ग्राम प्रति कि.ग्रा. बीज की दर से बीजोपचार करें। बीजों को 4–5 ग्राम ट्राइकोडर्मा पाउडर से प्रति कि.ग्रा. बीज की दर से उपचारित करके बोयें। खड़ी फसल में रोग दिखाई देने पर 0.2 प्रतिशत मैन्कोजेब या 0.1 प्रतिशत कार्बेण्डाजिम का छिड़काव करें।

कॉलररॉट/गर्दनीसड़न: यह रोग हानिकारक है जिससे उत्पादन में 30–40 प्रतिशत तक कमी हो सकती है। गर्मी व अधिक नमी के वातावरण में विशेष फफूँद द्वारा होता है, जिससे जमीन से लगे हुए तने के निचले हिस्से में यह फफूँद हल्के भूरे रंग के धब्बे बनाता है जो कि सफेद कवक जाल से ढक जाता है व इस पर लाल भूरे रंग के सरसों के बीज जैसे गोलाकार स्केलेरोशिया बनते है जो इस रोग का प्रमुख लक्षण है बाद में तने का यह हिस्सा सड़ जाता है जिससे पौधा मुरझा कर झुक/गिर जाता है।

प्रबंधन/नियंत्रण: बुवाई से पूर्व बीजो को थायरम 3 ग्राम या थायरम 2 ग्राम + कार्बेण्डाजिम 1 ग्राम प्रति कि. ग्रा. बीज की दर से बीजोपचार करें। बीजोको 4–5 ग्राम ट्राइकोडर्मा पाउडर से प्रति कि.ग्रा. बीज की दर से उपचारित करके बोयें। खड़ी फसल में रोग दिखाई देने पर 0.2 प्रतिशत मैन्कोजेब या 0.01 प्रतिशत कार्बेण्डाजिम का छिड़काव करें।

जीवाणु पशच्यूल रोग: यह रोग जेन्थोमोनास कम्पेस्ट्रिस पी.वी. ग्लाइसिनेज नामक जीवाणु द्वारा उत्पन्न होता है। इस रोग से फसल की उपजमें 3–37 प्रतिशत तक हानि होती है। शुरू में इस रोग के लक्षण बहुत छोटे हल्के भूरे रंग के धब्बे के रूप मे दिखाई देते है। जिसके चारों और पीली आभा दिखाई देती है। रोग की उग्र अवस्था में पूरी पत्ती पर धब्बे बन जाते हैं। पत्ती पीली पड़ कर सूख जाती है और अन्त में जमीन पर गिर जाती है।

प्रबंधन/नियंत्रण: इस रोग की रोकथाम के लिए रोग ग्रसित खेतों से प्राप्त बीजों को अगले साल बुवाई के काम में न लेवें। स्वस्थ प्रमाणित बीजों की बुवाई करें। रोग रोधी किस्में जैसे–जे. एस.–335, एन.आर.सी–12, एन.आर.सी.–37, एम.एस.सी.एस.–12, एन.आर.सी.–37, एम.एस.सी.एस.–450 इत्यादि को बुवाई के काम लेवें। खेत में पौधों पर रोग के लक्षण दिखाई देते ही 100 पी.पी.एम. स्ट्रेप्टोसाइक्लिन तथा 0.2 प्रतिशत कॉपर ऑक्सीक्लोराइड 50 डब्ल्यू.जी. के घोल का छिड़काव करें।

पीला/येलो मोजेक वाइरस: यह रोग मूँग बीन येलो मोजेक विषाणु द्वारा उत्पन्न होता है। इस रोग से फसल की उपज में 25 से 80 प्रतिशत तक नुकसान हो सकता है। यह एक विषाणु जनित रोग होता है। सफेद मक्खी इस वायरस (विषाणु) के वाहक का कार्य करते हुए रोग को फसल पर फैलाती है। जिसके कारण पौधों की वृद्धि रूक जाती है। पत्तियों पर हरे तथा गहरे चकते बन जाते है। पत्तियों के किनारे अन्दर की तरफ मुड़ जाते है। इस रोग का प्रमुख लक्षण पत्त्यो पर पीले–हरे रंग की पच्चीकारी बनना है। रोग तीव्र होने की स्थिति में पत्तियॉ पीली पड़ जाती है। बाद मे पीले हिस्सों पर गहरे भूरे रंग के धब्बे बन जाते है व धीरे–धीरे पत्तियाँ झुलसी हुई प्रतीत होती है। रोग ग्रसित फलियों में बीजों का आकार छोटा रह जाता है तथा इनकी संख्या भी कम हो जाती है तथा कहीं–कहीं बीज ही नही बनते है।

प्रबंधन/नियंत्रण: इसके प्रबंधन हेतु खेत के आस–पास उगे घास एवं खरपतवारों को जलाकर नष्ट कर देवें। रोग ग्रसित पौधो को उखाड़ कर जला देवें। रोग वाहक कीटों की रोकथाम हेतु डायमिथोयट या ऑक्सीडिमेटोन मिथाईल 200 मि.ली. प्रति हैक्टर दवा को 500–600 लीटर पानी में घोल बनाकर छिड़काव करें।

गेरुआ: यह एक फफूंद जनित रोग है, जो केवल जीवित पौधों में ही फैलता है। बारिश अधिक होने या तापक्रम कम (18 से 28 डिग्री. सेन्टीग्रेड) व नमी (आपेक्षित आर्द्रता 80 प्रतिशत के आस पास) अधिक होने पर व पत्तियों पर 3–4 घंटे नमी बने रहने पर रोग बढ़ जाता है। रोग का आगमन पौंधों पर छोटे–छोटे, सुई के आकार के मटमैले भूरे व लाल–भूरे, सतह से उभरे हूए धब्बों के रूप मे पत्तियों पर समूहों में होता है। इन धब्बो के आस–पास का हिस्सा पीला होता है। धब्बे पहले व अधिक संख्या में नीचे की पत्तियों की निचली सतह पर आते है। बाद में यह धब्बे गहरे भूरे–काले रंग के हो जाते है व धीरे–धीरे पत्ती पीली पड़ कर सूख जाती है। रोग के प्रकोप से एक सप्ताह के अंदर ही पूरी फसल की पत्तियाँ परिपक्व अवस्था से पहले ही झड़ जाती हैं एवं पैदावार में 40–80 प्रतिशत तक नुकसान हो जाता है। ग्रसित पत्तियों को उंगली से थपथपाने पर भूरे रंग का पाउडर निकलता है।

प्रबंधन/नियंत्रण: इसके नियंत्रण हेतु शुरूआती अवस्था में ग्रसित पौधों को उखाड़ कर नष्ट कर देना चाहिए तथा फसल पर हेक्जाकोनाजोल (कन्टॉफ) या प्रोपीकोनाजोल (टिल्ट) 800 मि.ली. या ट्राइडिमंफोन (बेलेटॉन) 800 ग्राम या ऑक्सीकार्बोक्सीन 800 ग्राम दवा को 800 लीटर पानी में घोल बनाकर एक हैक्टर में भली प्रकार छिड़काव करना चाहिए।

❋❋❋

हरी खाद के उपयोग से मृदा स्वास्थ्य एंव उत्पादकता में सुधार

विनोद कुमार यादव, राजेन्द्र कुमार यादव एवं राकेश कुमार यादव
कृषि विश्वविद्यालय, कोटा।

वर्तमान परिवेश में उत्पादन बढ़ाने की होड़ में किसान रासायनिक उर्वरकों का प्रयोग अधिकाधिक करने लगे है, खाद एवं उर्वरक का मतलब तो अब किसान के लिए सिर्फ यूरिया ही रह गया है। जिसके फलस्वरूप उत्पादन में तो अवश्य वृद्धि हुई, परन्तु मृदा स्वास्थ्य पर भी बुरा प्रभाव पड़ रहा है। रासायनिक उर्वरकों के बढ़ते प्रयोग के कारण कृषि भूमि का उपजाऊपन घटता जा रहा है। मृदा की उर्वराशक्ति नष्ट होती जा रही है। साथ ही कृषि रसायनों के अधिकाधिक प्रयोग से कृषि उपज भी विषाक्त होती जा रही है। उर्वरकों के पर्याय के रूप में जैविक खादों जैसे गोबर की खाद, कम्पोस्ट, हरी खाद आदि का प्रयोग कर सकते हैं। इसमें सबसे सरल और टिकाऊ हरी खाद का उपयोग है। हरी खाद के उपयोग से खेती की लागत तो कम होती ही है साथ ही साथ मृदा की उर्वराशक्ति को भी अगली फसल के लिए बढ़ाती है एंव अगली फसल की उपज भी बढ़ती है। हरी खाद के लिए मुख्य रूप से दलहली फसलें उगाई जाती हैं। इसकी जड़ों में गांठें होती हैं। इन ग्रंथियों में विशेष प्रकार के सहजीवी जीवाणु रहते हैं जो वायुमंडल में पाई जाने वाली नाईट्रोजन का यौगिकीकरण करके मृदा में नाइट्रोजन की पूर्ति करते हैं। इस प्रकार से स्पष्ट है कि दलहनी फसलें मृदा की भौतिक दशा को सुधारने के अलावा उसमें जीवांश पदार्थ एवं नाइट्रोजन की मात्रा भी बढ़ाती हैं। दलहनी फसलें खरपतवारों को नियंत्रित करने में भी सहायक हैं।

हरी खाद के लाभ

जीवांश पदार्थ को बढ़ाना और मृदा संरचना को सुधारना: यह निम्नलिखित सस्य क्रियाओं पर निर्भर होता है जैसे उगाई जाने वाली फसल का प्रकार, सिंचाई का पानी, मृदा की प्रकृति और प्रकार, प्रकाश काल, पौधों की आयु, पोषक तत्वों की पूर्ति और टीकाकरण एवं कुल बायोमास आदि। औसतन, हरी खाद के प्रयोग से मृदा में काफी मात्रा में जीवांश पदार्थ की वृद्धि होती है। साथ ही मृदा संरचना में भी सुधार होता है।

नाइट्रोजन यौगिकीकरण : यह भी निम्नलिखित सस्य क्रियाओं पर निर्भर होता है। इसमें उगाई जाने वाली दलहन फसल की आयु, उपलब्ध नाइट्रोजन ,उत्पादित कुल बायोमास, फसल की प्रकृति, मृदा का पी.एच. मान एवं वातावरण की दशा, सस्य क्रियाएं और फसल की स्थिति इन सभी का सघन तालमेल हो जाए तो नाइट्रोजन यौगिकीकरण अवश्य अच्छा होता है। अन्यथा पौधों की संख्या कम होना, देर से बुवाई करना और सूखा होने पर नाइट्रोजन यौगिकीकरण पर बुरा प्रभाव पड़ता है। मुख्य रूप से नाइट्रोजन यौगिकीकरण मृदा की उर्वरता, पानी की उपलब्धता और हरी खाद वाली फसल की किस्म पर निर्भर होता है।

सूक्ष्म मृदा जीवों की क्रियाशीलता बढ़ना : इसमें ताजा हरी खाद की फसल मृदा में मिट्टी पलटने वाले हल से दबाने पर सूक्ष्म जीवों की क्रियाशीलता तीव्र हो जाती है जिससे हरी खाद वाली फसल जल्दी गल–सड़ जाती है और अगली फसल को नाइट्रोजन की आपूर्ति हो जाती है। मृदा में सूक्ष्म जीवों की क्रियाशीलता मृदा में नाइट्रोजन–कार्बन अनुपात, मृदा तापक्रम, मृदा में नमी और पौधों की आयु व प्रकार पर निर्भर करती है। इस प्रकार हरी खाद वाली फसल को गलाने–सड़ाने में तीव्रता लाने के लिए मृदा में जैविक पदार्थ और कार्बन : नाइट्रोजन का अनुपात 15 : 1 और 25 : 1 के मध्य होना अति आवश्यक है।

मृदा में पहले से उपस्थित पोषक तत्वों की उपलब्धता को बढ़ाना– नाइट्रोजन की आपूर्ति के अतिरिक्त दलहनी फसलें अन्य मुख्य पोषक तत्वों को पुनः चक्रीय अवस्था में लाने में सहायक हैं जैसे नाइट्रोजन, फॉस्फोरस, पोटाश, कैल्शियम, मैग्नीशियम, सल्फर एवं सूक्ष्म पोषक तत्व हरी खाद वाली फसलों द्वारा फसल अवधि के दौरान संचित होते हैं। जब हरी खाद वाली फसल को मृदा में मिला दिया जाता है अथवा मृदा सतह पर गिरा दी जाती है तो जैसे–जैसे सड़ने की प्रक्रिया आरंभ होती है वैसे–वैसे पोषक तत्व अगली फसल को प्रचुर मात्रा में उपलब्ध होते हैं और जैविक पदार्थ के सड़ते समय कार्बनिक और अन्य प्रकार के अम्ल (एसिड) बनते हैं। इसी समय उपलब्ध फास्फोरस और पोटाश तथा सूक्ष्म पोषक तत्वों की उपलब्धता अगली फसल के लिए होती है।

मृदा के भौतिक गुणों में सुधार : हरी खाद मुख्य रूप से मृदा के भौतिक गुणों को सुधारने में बहुत लाभकारी होती है। मृदा के भौतिक गुण जैसे मृदा संरचना एवं रचना, नमी धारण की क्षमता तथा पोषक तत्वों की सघनता आदि। इसके अलावा मृदा के भौतिक गुण जैसे वायुसंचार, रन्ध्रावकाश, अपधावन क्षमता, हाईड्रोलिक कन्डक्टीविटी आदि को बनाए रखने में भी सहायक है।

खरपतवारों का प्रबन्धन : हरी खाद वाली फसलों की सघनता अधिक होने से खरपतवारों की बढवार नियंत्रण में रहती है। इसके अलावा पौधों द्वारा उत्पादित एलीलोपैथिक रसायनों के प्रभाव को भी कम करती है। हरी खाद उगाने वाले मौसम में पौधों के बीच प्रकाश, नमी एवं पोषक तत्वों को ग्रहण करने की प्रतिस्पर्धा भी रहती है जिससे मृदा के भौतिक गुणों में सुधार होता है जोकि अगली फसल की उपज बढ़ाने में बहुत लाभकारी है।

मृदा और जल संरक्षण : हरी खाद की फसल मृदा का संरक्षण करने में बहुत लाभकारी है तथा बिना फसल उगाए भी मृदा का कटाव रोकने अथवा बचाने में सहायक है। हरी खाद मृदा में रासायनिक अथवा यांत्रिक प्रकार से पानी के अपधावन को कम करने में भी सहायक है। विद्वानों के अनुसार मृदा सतह से वाष्पोत्सर्जन भी कम करने में सहायक है और वर्षाकाल में मृदा पर पपड़ी बनना रोकती है तथा पानी का मिट्टी में संचय बढ़ता है।

फसल उपज में बढ़ोतरी : हरी खाद के उपयोग से अगली फसल की वृद्धि और उत्पादन पर अध्ययन किया गया। हरी खाद के बाद धान उगाने पर बहुत लाभ मिलता है। इसके अलावा हरी खाद गेहूं, गन्ना और कपास की उपज बढ़ाने मे सहायक है।

हरी खाद वाली फसलों का प्रबन्ध

फसल का चुनाव : फसलों का चुनाव करते समय मुख्य रूप से दो बातों का ध्यान रखें।

गर्म जलवायु के लिए चुनाव : सनई, ढ़ैंचा, सोयाबीन, लोबिया, अरहर आदि। फसल सूखा सहन करने की क्षमता रखती हो।

ठंडे मौसम के लिए चुनाव : बरसीम, रिजका, सैंजी और घास आदि। दलहनी वंशानुकुल की हो और प्रतिकूल मौसम को सहन कर सकती हो।

- प्राकृतिक रूप से पुनः अंकुरित/बुआई योग्य हो।
- बीज प्रतिकूल परिस्थिति में भी अंकुरित होने की क्षमता रखता हो।
- उर्वरता को सहन कर अधिक वृद्धि करने में सक्षम हो।
- अच्छा बीज उत्पादन देने की क्षमता रखती हो।

जुताई : वर्षा के मौसम में वर्षा आधारित क्षेत्रों में जहां पर हरी खाद की फसल उगाना चाहते हैं दो जुताई पर्याप्त रहती हैं। तथा परम्परागत विधि से उगाने पर एक जुताई व दो जुताई/पलटाई हैरो से करना पर्याप्त रहता है। नमक प्रभावित क्षेत्रों में (मृदाओं) दो–तीन जुताई करके पाटा चलाकर खेत समतल करना आवश्यक है।

बुवाई की विधि : ढ़ैंचा अथवा सनई जैसी हरी खाद वाली फसल की बुवाई छिटकवां विधि से कर सकते हैं। इससे पहले 10–12 घंटे बीज को भिगाने से बुवाई करने पर अंकुरण अति शीघ्र होता है बशर्ते कि बीज मृदा में अच्छी प्रकार से चिपक जाना चाहिए। शुष्क बुवाई के लिए ढैंचा/सनई का बीज 30–35 कि.ग्रा./हेक्टेयर पर्याप्त रहता है। इसके अलावा हल से भी बुवाई कर सकते हैं। ऐसे में पाटा अवश्य लगाना चाहिए। छिटकवां विधि की अपेक्षा पंक्तियों में बुवाई करना अधिक लाभदायक रहता है।

बुवाई का समय : वर्षाकालीन मौसम का लाभ लेने के लिए मानसून के आने से पूर्व शुष्क बुवाई कर सकते हैं और वर्षा आधारित क्षेत्रों में भी वर्षा के आरंभ होने से पूर्व बुवाई करना लाभदायक रहता है। इसके अतिरिक्त उत्तरी भारत में वर्षा आधारित क्षेत्रों में हरी खाद वाली फसलों की बुवाई जुलाई के शुरू में कर सकते हैं। ग्रीष्मकाल में सिंचाई की सुविधा होने पर मध्य अप्रैल से मध्य मई तक बुवाई कर सकते हैं।

बीज दर : हरी खाद वाली फसलों की वृद्धि एवं विकास के लिए उच्च बीज दर रखने की सस्ंतुति की गई है। सामान्य दशा में बुवाई के लिए ढैंचा व सनई की बीज दर 50 कि.ग्रा./हेक्टेयर पर्याप्त रहती है जबकि नमक प्रभावित मृदाओं में जहां अंकुरण क्षमता कम होने की संभावना हो उच्च बीज दर रखना लाभकारी रहता है और दूसरी हरी खाद वाली फसलों की बीज दर 40–50 कि.ग्रा./हेक्टेयर पर्याप्त रहती है।

बीजोपचार : हरी खाद वाली दलहनी फसलों की जड़ों में ग्रन्थियां (गांठें) होती हैं जो नाईट्रोजन यौगिकीकरण करने में सहायक हैं। हरी खाद वाली फसलों के बीज को राईजोबियम से उपचारित करके बोने से जड़ों में गांठों की संख्या में बढ़ोतरी होती है जिससे वायुमंडल से नाइट्रोजन यौगिकीकरण अधिक होता है। इससे कुल मिलाकर अगली फसल के उत्पादन में बढ़ोतरी मिलती है।

उर्वरक उपयोग : हरी खाद की फसल को परम्परागत तरीके से उगाने पर बुवाई के समय नाइट्रोजन 15–25 कि.ग्रा./हेक्टेयर और फॉस्फोरस 30–45 कि.ग्रा./हेक्टेयर देना लाभदायक रहता है।

सिंचाई : वर्षा आधारित क्षेत्रों में हरी खाद की फसलों को वर्षा ऋतु में उगाया जाता है। अतः इन क्षेत्रों में सिंचाई की उपलब्धता नहीं होती और न ही प्रायः आवश्यकता पड़ती है। ग्रीष्मकालीन हरी खाद वाली फसलों में आवश्यकतानुसार 2–3 सिंचाई करनी चाहिए।

मृदा पलटते समय फसल की आयु : अधिकतम लाभ लेने के लिए हरी खाद की फसल की किस अवस्था पर खेत में जुताई करें, यह एक मुख्य बिन्दु है। फसल का मृदा में पलटाई का समय पुष्पावस्था अच्छा माना गया है। यह अवस्था बुवाई के लगभग 8 सप्ताह बाद आ जाती है। ढ़ैंचा की 8 सप्ताह बाद अधिकतम वानस्पतिक वृद्धि हो चुकी होती है जबकि सनई 60–70 दिन में पलटने योग्य हो जाती है। जिसके फलस्वरूप उत्पादन में वृद्धि होती है ।

पलटाई/जुताई की विधि : खड़ी फसल को पहले पाटा चलाकर मृदा पर गिरा दिया जाता है । इसके बाद हैरो / मिट्टी पलटने वाले हल से काटकर खेत को 15–25 दिन के लिए छोड़ दिया जाता है । ध्यान रहे कि पलटाई उपयुक्त नमी, गहराई पर ही करें। हरी खाद की फसलों की पलटाई की गहराई 10–15 से.मी.होनी चाहिए। उथली पलटाई की अपेक्षा गहरी पलटाई अपेक्षाकृत अधिक लाभदायक रहती है।

मृदा में पलटने और फसल बोने के बीच समय : अच्छे परिणाम प्राप्त करने के लिए हरी खाद की फसलों की पलटाई और अगली फसल की बुवाई के बीच समय 15–25 दिन होना चाहिए। अप्रेल में बोई गई फसल मई जून तक अवश्य पलट देनी चाहिए इससे जुलाई में बोई जाने वाली फसल को अच्छी प्रकार पोषक तत्वों की आपूर्ति हो जाती है। कुल मिलाकर मृदा की उर्वरता एवं उत्पादकता बढ़ाने में हरी खाद का विशेष महत्व है। इसके उपयोग से मृदा में जैव पदार्थ की मात्रा में वृद्धि होती है जो अंततः मृदा के भौतिक, रसायनिक एवं जैविक गुणधर्मो में अच्छे परिवर्तन लाने में सहायक है। दलहनी फसलों का प्रयोग करने से अगली फसलों को नाइट्रोजन उर्वरक की कम मात्रा की आवश्यकता होती है और साथ ही उसकी पैदावार में भी वृद्धि होती है।

राइजोबियम के द्वारा जैविक नत्रजन स्थिरीकरण-दलहनी फसलों के लिये एक वरदान

अर्जुन सिंह जाट, सुमित्रा देवी बम्बोरिया एवं बलदेव राम
कृषि विज्ञान केन्द्र, मौलासर, नागौर–II एवं कृषि महाविद्यालय, उम्मेदगंज, कोटा

दलहनी फसलें (मूंग, मोठ, चंवला, कुल्थी, उड़द, अरहर, चना, मसूर, मटर व खेसारी), कुछ तिलहनी फसलें (मूंगफली एवं सोयाबीन) तथा चारा फसलों (लोबिया, ग्वार, बरसीम व रिजका) आदि में वायुमंडल से नत्रजन स्थिरीकरण की एक विलक्षण क्षमता पाई जाती है। नत्रजन का संचय इन फसलों की जड़ों में विकसित ग्रंथियों (नोड्यूल्स) में उपस्थित एक विशेष जीवाणु जिसे "राइजोबियम" कहते हैं, के द्वारा संपन्न होता है। नत्रजन की स्थिरीकरण प्रक्रिया इन फसलों के लिए बहुत लाभकारी होती है जिससे इनको नत्रजन की कमी वाली भूमि में सफलतापूर्वक उगाया जा सकता है। यह भूमि की उर्वरा शक्ति में न केवल टिकाऊपन लाती है बल्कि उसकी उर्वरा शक्ति में वृद्धि भी करती है।

वायुमंडल में 78 प्रतिशत नत्रजन पाई जाती है लेकिन जैवमंडल (बायैंस्फीयर) की संचित नत्रजन की आवश्यकता इसकी उपलब्धता से कहीं अधिक होती है। ऐसा इसलिए होता है क्योकि सभी जीव और अधिकांश पेड–पौधे गैसीय नत्रजन को पचा नहीं पाते हैं। ऐसा आंकलन किया गया है कि समुद्र तल की ऊंचाई पर एक हैक्टर क्षेत्र के ऊपर लगभग 78,000 टन निष्क्रिय (इनर्ट) गैसीय नत्रजन पाई जाती है। इसके विपरीत सार्वभौम (ग्लोबल) जैविक नत्रजन स्थिरीकरण एक वर्ष में केवल 1750 लाख टन होता है जिसमें से सहजीवी (सिम्बायैंसिस) विधि से स्थिरीकरण लगभग 700 लाख टन होता है।

मूल ग्रंथिका का निर्माण

शिम्बीय (लेगूमिनस) मूल ग्रंथिकाओं में एक विशेष संरचना होती है जैसा कि मेजबान पादप (होस्ट प्लान्ट) और संक्रमण करने वाले राइजोबियम के बीच पारस्परिक क्रियाओं के फलस्वरुप बनती है। मूल ग्रंथिका का निर्माण आरंभ होने में शिम्ब और राइजोबियम में जो भेद उत्पन्न होता है वह दर्शाता है कि कोशिकीय पहचान सहजीवन (सिम्बायोसिस) स्थापित करने में महत्वपूर्ण है, जो कि संक्रमण क्षेत्र में पहचान में शामिल होता है। विभिन्न शिम्बी लेक्टिन (लेग्यूमलेक्टिन) कार्बोहाइड्रेट बाइंडिंग प्रोटीन्स होती हैं जो राइजोबियम की सतह पर पाई जाती हैं।

राइजोबियम से संक्रमण के कारण यदि मूलरोम मुड़ने लगें जो कि अथितीय सक्रियता दर्शाते हैं तो बाह्य त्वचीय कोशिकाओं की (जो मूलरोम सृजन करती हैं) भित्ति मोटी होना आरंभ कर देती हैं। इसके बाद वह बढ़ती हैं और संक्रमण बिंदू बनाती हैं। संक्रमण धागे में शाखादार बहुकोशीय संरचना मूलरोम में पाई जाती है। संक्रमण धागे मूल कोर्टेक्स कोशिका द्रव्य की तरह वृद्धि करते हैं। मूलरोम से अंतः कार्टेक्स तक संक्रमण धागे का रास्ता स्पष्ट रुप से चिन्हित रहता है। संक्रमण धागे अंतः त्वचा में प्रवेश नहीं करते हैं। अतः ग्रंथिकाएं कार्टेक्स में वाहिर्जात (एक्सोजीन्स) ढंग से बनती हैं। मूल कोशिकाओं का प्रचुर मात्रा में बनना संक्रमण धागे से राइजोबियम के छोड़ने पर निर्भर करता है। इस प्रकार वृद्धि करती हुई ग्रंथिकायें मूल की बाह्य त्वचा को तोड़कर जड़ की प्राथमिक सीमा के बाहर निकल जाती है।

नत्रजन स्थिरीकरण की प्रकिया

जैविक नत्रजन स्थिरीकरण एक घटाव किण्वन वायुमंडलीय डाईनाइट्रोजन से अमोनिया में बदलने की किया है। यह गुण केवल राइजोबियम में ही पाया जाता है जिसकी तीन जेनरा (राइजोबियम, ब्रेडीराइजोबियम और अजोराइजोबियम) में पाये जाते हैं। प्राकृतिक राइजोबियम भूमि में पाये जाते हैं जहां शिम्बी फसल पिछले कई वर्षों से उगाई जाती हो। शिम्बी ग्रंथिकाओं में नत्रजन स्थिरीकरण एक विशेष किण्वक (एंजाइम), जिसे नाइट्रोजिनेज कहते हैं, द्वारा संपन्न होता है। यह एंजाइम राइजोबियम जीवाणु में पाया जाता है। नाइट्रोजिनेज समूह लोहा और गंधक प्रोटीन का बना होता है जिसको नाइट्रोजिनेज रिडक्टेज और नाइट्रोजिनेज कहते हैं। ऐसा पाया गया है कि नाइट्रोजिनेज के एक अणु के विघटन से एक अणु नाइट्रोजन का बनता है। नाइट्रोजिनेज की सबसे अधिक क्रियाशीलता 40–50 प्रतिशत ऑक्सीजन की सांद्रता पर होती है। इसके विपरीत इससे अधिक सांद्रता पर नाइट्रोजिनेज निष्क्रिय हो जाता है।

उड़द फसल

जडों पर शिम्बीय (लेगूमिनस) मूल ग्रंथिकाएं

जैविक नत्रजन के स्थिरीकरण को प्रभावित करने वाले कारक

- **नमी :** शिम्बी सहजीवन शुष्क और अधिक आर्द्रता अवस्था के लिये अधिक संवेदनशील होता है। अल्पकाल के लिये इन अवस्थाओं के प्रभाव के बाद सहजीवन की किया पुनः कार्य करने लगती है। इसके विपरीत दीर्घावस्था तक इन परिस्थितियों में रहने पर स्थायी क्षति हो जाती है और अंत में ग्रंथिकायें गिर भी जाती हैं। शुष्क भूमि में मूलरोम के बनने में बाधा पड़ती है जिसके फलस्वरूप राइजोबियम का संक्रमण नहीं हो पाता है। इसी प्रकार खेत में पानी रूकने की स्थिति में ऑक्सीजन की कमी हो जाती है जिससे ग्रंथिकाओं के विकास में बाधा पड़ती है।
- **तापमान :** अधिक तापमान पर प्रकाश संश्लेषण की क्रिया धीमी पड़ जाती है। अतः भोजन की पर्याप्त पूर्ति न होने पर नत्रजन के स्थिरीकरण पर कुप्रभाव पड़ता है।
- **पौष्टिक कारक :** पौधों की सामान्य वृद्धि के अतिरिक्त शिम्बी राइजोबियम सहजीवन क्रिया के लिये अतिरिक्त पोषण की आवश्यकता पड़ती है। लवण तत्व जो सहजीवन क्रिया को संपादित करने के लिये आवश्यक होते हैं वे हैं (मॉलिब्डिनम, कोबाल्ट और लोहा। भूमि में नत्रजन की कमी से शुष्क जलवायु में उगाई जाने वाली फसलों में पैदावार कम हो जाती है। अम्लीयता के साथ–साथ एल्युमिनियम और मैंगनीज की अधिकता तथा फॉस्फोरस, गंधक, कैल्शियम और मॉलिब्डिनम है। क्योंकि सहजीवन सुचारु रुप से संपन्न नहीं हो पाता है। उसी प्रकार नत्रजन उर्वरकों के प्रयोग से ग्रंथिकाओं के विकास पर कुप्रभाव पड़ता है।
- **लवणता :** शिम्बी की तुलना में राइजोबिया लवणता के ऊंचे स्तर को सहन कर सकता है। धीमी गति से बढ़ने वाली प्रजातियां लवण को अधिक सहन कर सकती हैं। यद्यपि लवणीय और सामान्य भूमि में विकसित होने वाली राइजोबियम की प्रजातियों में विशेष अंतर पाया जाता है।
- **कर्षण कियाएं :** अरहर की मूंग के साथ अंतः फसल ग्रंथिकाओं के बनने की क्षमता को बढ़ा देती है। इसके विपरीत अरहर की ज्वार के साथ अंतःफसल का ग्रंथिकाओं के बनने पर कुप्रभाव नहीं पड़ता है। धान के खेत में वातनिरपेक्ष (एनरोबिक) दशा में राइजोबियम के विकास पर किस प्रकार का क्या प्रभाव पड़ता है जिसका अभी तक पता नहीं चल पाया है।
- **कीटों से क्षति :** दो कीट (सिटोना और रिवालिया) शिम्बी ग्रंथिकाओं पर आक्रमण करते हैं। विशेषकर रिवोलिया की गिडारें ग्रंथिकाओं पर छेद करके उनको क्षति पहुंचाती हैं।

राइजोबियम की प्रभावी प्रजातियां

प्राकृतिक राइजोबियम जो भूमि में पाये जाते हैं वह नत्रजन स्थिरीकरण में अधिक कुशल नहीं होते हैं तथा उनके जीवाणुओं की संख्या भी पर्याप्त नहीं होती है। इसके साथ ही प्राकृतिक राइजोबियम में अधिक संख्या में ग्रंथिकाओं का बनना और उनका आकार का बड़ा होना अधिक मात्रा में नत्रजन के स्थिरीकरण का सूचक नहीं है। राइजोबियम की उन्नत प्रजातियां न केवल प्रत्येक शिम्बी फसल के लिये अलग–अलग होती हैं बल्कि प्रत्येक उन्नत प्रजातियों के लिये भी अलग–अलग होती हैं। इसलिये प्राकृतिक राइजोबियम प्रत्येक दलहनी फसल के लिये नत्रजन स्थिरीकरण के लिये उपयुक्त नहीं होते हैं।

नत्रजन स्थिरीकरण की बढ़ोत्तरी के कारणों का पता लगाने से पहले इस बात का आंकलन किया जाये कि प्राकृतिक राइजोबियम कितनी नत्रजन का संचय करते है और क्या यह नत्रजन उनकी आवश्यकतानुसार प्रर्याप्त है या नहीं। गहन अध्ययन के बाद यह स्पष्ट हुआ है कि प्रारंभ में 10–25 किग्रा. नत्रजन प्रति हैक्टर की दर से राइजोबियम प्रजाति को पौषक तत्व के रूप में आवश्यकता पड़ती है। यह सुनिश्चित करता है कि सहजीवन द्वारा नत्रजन का स्थिरीकरण पर्याप्त नहीं होता है अतः इसमें वृद्धि लाने की आवश्यकता है। दलहनी फसलों के बीज को राइजोबियम की कुशल प्रजातियों से टीकाकरण करके या दलहनी फसलों में अभिजनन के द्वारा ऐसी प्रजातियों का विकास करना चाहिए जिनमें ग्रंथिकायें अधिक संख्या में बनें और नत्रजन का स्थिरीकरण अधिक हो। इस दिशा में देश में गहन शोध कार्य हुए हैं, जिनके फलस्वरुप 11 दलहनी फसलों की राइजोबियम की उन्नत प्रजातियों का विकास हुआ है। इन प्रजातियों का मदर कल्चर भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली से प्राप्त किया जा सकता है।

राइजोबियम इनोकूलैन्ट्स

राइजोबियम इनोकूलैन्ट्स वे संवहक हैं जो राइजोबियम की उन्नतशील

प्रजातियों को प्रयोगशाला से खेत तक पहुंचाते हैं। भूमि में राइजोबियम की संख्यां को बढ़ाने की प्रमुख प्रचलित विधि है एक खेत की मिट्टी जिसमें राइजोबियम जीवाणुओं की संख्यां पर्याप्त हो उसे दूसरे खेत की मिट्टी में ड़ालकर जीवाणुओं की संख्या को संवर्धन करना है। यद्यपि इस विधि से दलहन उत्पादन में वृद्धि तो होती है, लेकिन इससे निम्नलिखित हानियाँ हैं।

- यदि एक खेत की मिट्टी जो कि वह अवांछित रोग एवं कीटाणु जैसे उकठा, निमिटोड, तना गलन, फली भेद व वीविल आदि से संक्रमित होती है तो वह दूसरे खेत में डालने पर संक्रमण की दर को बढ़ाती है।
- इस विधि में कम से कम 1000 किग्रा. से अधिक मिट्टी की आवश्यकता पड़ती है।
- मिट्टी को एक खेत से दूसरे खेत तक ले जाने में व्यय बहुत अधिक आता है।

टीकाकरण करने की विधियां

- **बीज का टीकाकरण :** राइजोबियम का प्रयोग बुआई से पहले किया जाता है। टीकाकरण हेतु कल्चर के पाउड़र बीज में मिलाना सबसे सरल विधि है लेकिन इस विधि में टीका बीज के साथ कम चिपकता है। टीका बीज में ढंग से चिपकाने के लिए कई विधियों का प्रयोग किया गया है। सबसे सरल विधि पानी से टीका की लेई बनाकर बीज में मिलाना है। इसकी प्रकार दूसरी विधि है पानी से भीगे बीज में कल्चर के पाउड़र मिलाना और बाद में बीज को सुखाना।
- **बीज का टीकाकरण चिपकने वाले पदार्थ के द्वारा :** यदि चिपकने वाले पदार्थ की लेई बनाकर टीकाकरण किया जाये तो बीज से इनोकूलेन्ट्स अधिक मात्रा में चिपक जाते हैं। चिपकने वाले पदार्थ में 10 प्रतिशत गुड़ का घोल, सुक्रोज, शीरा, मिथाइल सेलूलोज, मिथाइल इथाइल सेलूलोज, बबूल का गोंद व ग्वार का गोंद इत्यादि प्रमुख हैं। चिपकाने वाले पदार्थों से राइजोबियम सरलता से चिपक जाता है और उनके जीवित रहने की संभावना भी बढ़ जाती है।
- **बीज की गोली या छर्रा बनाकर:** बीज के छर्रे इसलिए बनाये जाते हैं कि राइजोबियम मिट्टी के क्षारीयपन से बच जाये इसके साथ ही साथ बीज के छिलके में जो विषैले पदार्थ होते हैं उससे अम्लीय उर्वरकों से भी रक्षा हो जाती है। छर्रे बनाने में जो पदार्थ प्रयोग किये जाते हैं उनमें चूना, डोलोमाइट, जिप्सम, बैन्टोनाइट, चिकनी मिट्टी, रॉक फॉस्फेट और उनके यौगिक, टिटेनियम डाईऑक्साइट, टॉल्क पाउडर, मिट्टी, पांस और चारकोल प्रमुख हैं।
- **सीधे खेत में इनोकुलेशन या टीकाकरण :** जहां बीज का टीकाकरण संभव नहीं होता है वहां भूमि में सीधे टीकाकरण करते हैं। इस विधि में राइजोबियम के दानों या कणों पर आधारित उर्वरक के साथ पंक्तियों में बुआई की जाती है। इसके साथ ही साथ यह छोटे पौधों के पुनः टीकाकरण में भी लाभदायक होता है। इस विधि में राइजोबियम की पतली लेई (सैलरी) भी नाली में छिड़की जा सकती है।

राइजोबियम की भूमि में स्थिति

दलहनी फसलों की जड़ों में ग्रंथिकाओं के बनने की स्थिति से राइजोबियम की सक्रियता का पता लगाया जा सकता है। सर्वेक्षण के द्वारा ग्रंथिकाओं को गिनने पर राइजोबियम की स्थिति चना और अरहर में इस प्रकार आंकी गई है (तालिका 1)। सर्वेक्षण से यह भी ज्ञात हुआ है कि चना में लगभग 50 प्रतिशत क्षेत्रों में ग्रंथिकाएं अल्प पाई गई है जबकि अरहर में यह स्थिति लगभग 90 प्रतिशत है।

तालिका 1: अरहर एवं चना फसल में नत्रजन स्थिरिकरण हेतु जड़ों में ग्रंथिकाओं की संख्या

क्र. सं.	श्रेणी	ग्रंथिकाएं की संख्या/पौधा	
		अरहर	चना
1.	अल्प	1–10	1–5
2.	मध्यम	11–20	6–10
3.	अच्छा	21–40	11–20
4.	बहुत अच्छा	40 से अधिक	20 से अधिक

राइजोबियम की उन्नत प्रजातियों की दक्षता

राइजोबियम की उन्नत प्रजातियों की दक्षता दलहनों की पैदावार में वृद्धि होने से आंकी जाती है। प्रदर्शनों से स्पष्ट हुआ है कि राइजोबियम से बीज का टीकाकरण करने से दलहन की पैदावार में आशातीत वृद्धि अन्य आदानों की तुलना में बहुत अधिक वृद्धि होती है। तीन वर्षों में लगाये गये प्रदर्शनों में राइजोबियम से टीकाकरण करने से दलहनों की पैदावार में औसतन मूंग 6.5 से 30.9 प्रतिशत, उड़द 1.2 से 40.9 प्रतिशत और अरहर 1.0 से 37 प्रतिशत वृद्धि हुई है। इसी प्रकार राइजोबियम की उन्नतशील प्रजातियों और अतिथेय फसल की प्रजातियों के बीच प्रतिस्पर्धा भी पाई गई जैसे चना की 9 उन्नतशील प्रजातियों में से आई. सी. 149 एवं अरहर की प्रजाति आई.एच.पी.195 सर्वोत्तम पाई गई।

जैविक नत्रजन के स्थिरीकरण से दलहनी पैदावार बढ़ने में बाधाएं

शोध प्रक्षेत्रों और किसानों के खेतों में राइजोबियम पर किए गये प्रदर्शनों में भली प्रकार राइजोबियम की उपयोगिता दर्शाई गयी है परन्तु राइजोबियम टीकाकरण किसानों में उतना लोकप्रिय नहीं हुआ है जितनी अन्य लागतें हुई हैं इसके लिए निम्नलिखित बाधाएं उत्तरदायी है।

- **राइजोबियम का उत्पादन कम होना :** एक हैक्टर क्षेत्र के लिए 500–600 ग्राम राइजोबियम कल्चर की आवश्यकता होती है।

देश में दलहन का क्षेत्रफल 240 लाख हैक्टर है। अतः प्रतिवर्ष 1,20,000 टन राइजोबियम की आवश्यकता होती है। उसके विपरीत देश में प्रतिवर्ष राइजोबियम का उत्पादन मात्र 2,000 टन होता है। इस प्रकार प्रतिवर्ष 1,18,000 टन राइजोबियम की कमी रहती है जिसके कारण प्रत्येक क्षेत्र में इसका प्रयोग नहीं हो पाता है।

- **संवहक (इनोकूलेन्ट) की गुणवत्ता ठीक न होना :** यद्यपि राइजोबियम के लिए मानक तैयार कर लिए गये है जिसके अनुसार नमूनों में राइजोबियम की संख्या गिनी जाती है जो वास्तविक राइजोबियम नही होते बल्कि बैक्टीरिया सम्मिलित हो सकते हैं। अन्य लागतों की तुलना में राइजोबियम पर प्रचार–प्रसार कम हुआ है।

- **प्राकृतिक कारक :** इन कारकों में जैविक व अजैविक दबाव आते है जैसे जैविक दबाव में प्राकृतिक राइजोबियम का उन्नतशील राइजोबियम सफल रहते हैं। अजैविक कारकों में तापमान, नमी एवं भूमि का पी–एच मान आदि आते हैं जिनका राइजोबियम के ऊपर कुप्रभाव पड़ता है।

- संवहक का अच्छे गुणन नही होना।

- भंडारण और स्थानांतरण की बेहतर सुविधाओं का न होना जिसके कारण राइजोबियम कम समय तक जीवित रहता है।

राइजोबियम कल्चर से दलहनों की पैदावार बढ़ाने की संभावनाओं के लिए सुझाव

- अधिक कुशल राइजोबियम की प्रजातियों का विकास करना।
- ऐसी प्रजातियों का विकास करना जो भूमि का क्षारीयपन, जल भराव, उच्च तापमान एवं शुष्कावस्था आदि के लिए सहनशील हो।
- दलहन फसलों हेतु इस प्रकार की प्रजातियों का विकास करना जो वायुमंडलीय नत्रजन का अधिक मात्रा में स्थिरीकरण करें।
- मैदानी क्षेत्रों के लिए राइजोबियम की प्रजातियों का विकास करना।
- राइजोबियम कल्चर के भंडारण के लिए उपयुक्त परिस्थितियों का विकास करना।
- राइजोबियम के उपयुक्त संवहक को विकसित करना।

उत्पादन बढ़ाने हेतु प्रयास

- राइजोबियम उत्पादन इकाइयों को मदर कल्चर उपलब्ध करना।
- वर्तमान में उत्पादन इकाइयों को सुदृढ़ करना जिससे वे अधिक से अधिक राइजोबियम पैदा कर सकें।
- राज्य के कृषि विश्वविद्यालयों, भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद् की संस्थाओं और गैर सरकारी संस्थाओं में नई उत्पादन इकाइयों को स्थापित करके उत्पादन को बढ़ाना।
- प्रत्येक उत्पादन इकाई के पास उचित क्षमता का फर्मेंटर होना चाहिए जिससे वे राइजोबियम का उत्पादन कम समय में अधिक से अधिक कर सकें।
- पॉलीमर आधारित संवहकों को प्रयोग में लाना चाहिए जिससे अधिक से अधिक राइजोबियम जीवित रह सके और उनका जीवन स्तर बढ़ सके। भंडारण प्रत्येक उत्पादन इकाई के पास इनोकुलेंट के भंडारण की उचित व्यवस्था होनी चाहिए। भंडारण की व्यवस्था जहां राइजोबियम का उत्पादन संयत्र के पास होना चाहिए।

स्थानांतरण

राइजोबियम को एक स्थान से दूसरे स्थान तक ले जाने के लिए वातानुकूलित वाहन की व्यवस्था होनी चाहिए जिससे अधिक समय तक राइजोबियम जीवित रह सकें।

प्रचार के कार्यक्रम

- किसानों के बीच राइजोबियम के उपयोगी होने का प्रचार–प्रसार चल चित्र के माध्यम से किया जाये।
- किसानों और प्रसार कार्यकर्ताओं को राइजोबियम के उपयोग करने का प्रशिक्षण दिया जाये।
- राइजोबियम पर किसानों के खेतों पर अधिक से अधिक प्रदर्शन किए जायें।

चावल की जैव संवर्धित किस्में

मनोज कुमार, संध्या, के .एम. शर्मा, मुकुल एवं पवन कुमार
कृषि अनुसंधान केन्द्र, उम्मेदगंज, कृषि विश्वविद्यालय, कोटा, राजस्थान राज्य बीज निगम सीमित पंत कृषि भवन, जयपुर एवं केंद्रीय शुष्क बागवानी संस्थान, बीकानेर

भारत एक विशाल देश है जिसमें प्राकृतिक संसाधन एवं खाद्य पदार्थ प्रचुर मात्रा में उपलब्ध है किंतु फिर भी जनसंख्या के एक बड़े भाग को वांछित मात्रा में पौष्टिक भोजन प्राप्त नहीं हो पाता है, जिसके परिणामस्वरुप लोग कुपोषित और अभाव ग्रस्त रहते हैं ।मानव को बेहतर स्वास्थ्य व अपनी शारीरिक क्रियाओं को पूरा करने के लिए दैनिक आहार में पौष्टिक तत्वों जैसे कार्बोहाइड्रेट्स, वसा, प्रोटीन व विटामिनों के साथ अनेक सूक्ष्म तत्वों की आवश्यकता पड़ती है, जिनमें मुख्यरूप से जिंक, आयरन, विटामिन ' ए ' और आयोडिन इत्यादि हैं ।पोषक आहार नही मिलने से विभिन्न सूक्ष्म तत्वों की कमी शरीर को अनेक प्रकार से प्रभावित करती है जिसको सामान्य शब्दों में कुपोषण कहा जाता है ।कुपोषण से उभरने के लिए हमें ऐसा संतुलित आहार पूल बनाने की परम आवश्यकता है जो पोषण से जन स्वास्थ्य सुदृढीकरण प्रदान कर सके और जो सभी के लिए सुलभ हो।इसी के परिणामस्वरूप एक नया विज्ञान सामने आया है, बायोफोर्टिफिकेशन (जैव संवर्धित) इससे कुपोषण समाधान के नए द्वार खुल गए हैं ।खाद्य फसलें हमें मानव स्वास्थ्य विकास और चयापचय के लिए महत्वपूर्ण पोषक तत्व प्रदान करती हैं ।पोषक तत्वों के असंतुलन से विकार या बीमारियां हो सकती हैं। आमतौर पर खाए जाने वाले खाद्य पदार्थों में विटामिन और खनिजों को शामिल करना तथा पोषक तत्वों की कमी को रोकने का एक अच्छा तरीका हो सकता है।ऐसी ही एक तकनीक है, बायोफोर्टिफिकेशन, जो कि पादप प्रजनन द्वारा फसलों की पोषक गुणवत्ता बढ़ाने की तकनीक है। बायोफोर्टिफिकेशन दो शब्दों से मिलकर बना है, जिसमें पहला ग्रीक शब्द 'बायोस" का अर्थ है 'जीवन' और दूसरा लैटिन शब्द "फोर्टिफिकेयर' का अर्थ है मजबूत बनाना। इस प्रकार बायोफोर्टिफिकेशन फसलों के पोषण मूल्य को बढ़ाने के लिए प्रजनन की एक विधि है। पारम्पारिक पौध प्रजनन एवं आधुनिक जैवप्रौद्योगिकी के द्वारा पोषण तत्वों जैसे आयरन व जिंक से भरपूर फसल उत्पादों का विकास करना बायोफोर्टिफिकेशन कहलाता है बायोफोर्टिफाइड तकनीक द्वारा पोषकता में वृद्धि होती है वैज्ञानिक इन फसलों के विकास के दौरान उनके बीज में पोषक तत्व और विटामिन, जड़ द्वारा अवशोषित कर फसलों को बायोफोर्टिफाइड कर रहे है। प्राकृतिक रूप में आहार में पोषक तत्वों के वांछित स्तर प्रदान करने के लिए बायोफोर्टिफिकेशन सबसे स्थायी और लागत प्रभावी साधन है।

चावल की प्रमुख जैव संवर्धित किस्में

सी आर धान 315

चावल की यह किस्म राष्ट्रीय चावल अनुसंधान संस्थान, कटक द्वारा वर्ष 2020 में विकसित की गयी है।इस किस्म के पॉलिश किए गए दानो में जस्ता की मात्रा 24.9 पीपीएम होती है यह किस्म 130 दिन में पककर तैयार हो जाती है तथा 50 क्विंटल प्रति हैक्टेयर की दर से औसत उपज देती है ।

सी आर धान 311 (मुकुल)

चावल की यह किस्म राष्ट्रीय चावल अनुसंधान संस्थान, कटक द्वारा वर्ष 2020 में विकसित की गयी है। इस किस्म के पॉलिश किए गए दानो में भरपूर मात्रा में प्रोटीन (10.1 प्रतिशत) और जस्ता (20.1 पीपीएम) पाया जाता है, चावल की यह किस्म 124 दिन में पककर 46 क्विंटल प्रति हैक्टेयर की दर से औसत उपज देती है। यह किस्म खरीफ मौसम में बारानी उथली तराई और मध्यम भूमि के लिए उपयुक्त है ।

जिन्को राइस एमएस

चावल की यह किस्म इंदिरा गांधी कृषि विश्वविद्यालय, रायपुर द्वारा वर्ष 2018 में विकसित की गयी है।इस किस्म के पॉलिश किए गए दानो में भरपूर मात्रा में जस्ता (27.4 पीपीएम) पाया जाता है। चावल की यह किस्म 135 दिन में पककर 58 क्विंटल प्रति हैक्टेयर की दर से औसत उपज देती है। यह किस्म खरीफ मौसम में बारानी उथली तराई और मध्यम भूमि के लिए उपयुक्त है। यह किस्म खरीफ मौसम में बारानी और सिंचित परिस्थितियों में अगेती और मध्यम बुवाई के लिए उपयुक्त है ।

डी आर आर धान 49

चावल की यह किस्म भारतीय चावल अनुसंधान संस्थान, हैदराबाद द्वारा वर्ष 2018 में विकसित की गयी है।इस किस्म के पॉलिश किए गए दानो में भरपूर मात्रा में जस्ता (25.2 पीपीएम) पाया जाता है। चावल की यह किस्म 130 दिन में पककर 50 क्विंटल प्रति हैक्टेयर की दर से औसत उपज देती है। यह किस्म खरीफ और रबी मौसम में सिंचित परिस्थितियों के लिए उपयुक्त पायी गयी है।

डी आर आर धान 48

चावल की यह किस्म भारतीय चावल अनुसंधान संस्थान, हैदराबाद द्वारा वर्ष 2018 में विकसित की गयी है।इस किस्म के पॉलिश किए गए दानो में भरपूर मात्रा में जस्ता (24.0 पीपीएम) पाया जाता है। चावल की यह किस्म 138 दिन में पककर 52 क्विंटल प्रति हैक्टेयर की दर से औसत उपज देती है। यह किस्म खरीफ मौसम में सिंचित परिस्थितियों के लिए उपयुक्त पायी गयी है ।

डी आर आर धान 45

चावल की यह किस्म भारतीय चावल अनुसंधान संस्थान, हैदराबाद द्वारा वर्ष 2018 में विकसित की गयी है।इस किस्म के पॉलिश किए गए दानो में भरपूर मात्रा में जस्ता (22.6 पीपीएम) पाया जाता है। चावल की यह किस्म 130 दिन में पककर 50 क्विंटल प्रति हैक्टेयर की दर से औसत उपज देती है। यह किस्म खरीफ मौसम में लसचित परिस्थितियों के लिए उपयुक्त पायी गयी है ।

सी आर धान 310

यह किस्म राष्ट्रीय चावल अनुसंधान संस्थान, कटक द्वारा वर्ष 2016 में विकसित की गयी है।इस किस्म के पॉलिश किए गए दानो में भरपूर मात्रा में प्रोटीन की मात्रा (10.30 प्रतिशत) होती है। यह किस्म 125 दिन में पककर तैयार हो जाती है तथा 45 क्विंटल प्रति हैक्टेयर की दर से औसत उपज देती है। यह खरीफ मौसम में सिंचित मध्य–प्रारंभिक स्थितियों के लिए उपयुक्त पायी गयी है

मिर्च में समेकित रोग एवं कीट प्रबंधन

हनुमान सिंह
कृषि महाविद्यालय, हिण्डोली–बून्दी, राजस्थान।

मिर्च भारत की प्रमुख मसाले वाली फसलों में एक महत्वपूर्ण नगदी फसल हैं। भारत में आंध्र प्रदेश, कर्नाटक, महाराष्ट्र, उड़ीसा, तमिलनाडु, मध्य प्रदेश, पश्चिम बंगाल तथा राजस्थान प्रमुख मिर्च उत्पादक राज्य हैं। जिनमें कुल उत्पादन का 80 प्रतिशत भाग प्राप्त होता हैं। मिर्च में दो महत्वपूर्ण पदार्थ होते हैं, काप्संथिन जो लाल रंग के लिए जिम्मेदार है, दूसरा कैप्सैसिन जो तीखापन प्रदान करता हैं। मिर्च में विटामिन ए, सी व खनिज लवण भी पाये जाते है। इसकी खेती लगभग पूरे देश में की जाती हैं लेकिन मिर्च में कई प्रकार के रोगों एवं कीटों का प्रकोप होता हैं, जिससे उपज बहुत कम हो जाती हैं। अगर समय पर इन रोगों एवं कीटों की पहचान करके उनका प्रबंधन कर लें, तो अधिक उत्पादन प्राप्त कर सकते हैं।

मिर्च में प्रमुख रोग

आर्द्र गलन (डैम्पिंग ऑफ): यह रोग खराब जल निकासी वाली और आर्द्रता वाली मिटटी में अधिक तीव्रता से नुकसान करता है। रोग का संक्रमण पौधे की छोटी अवस्था में देखा गया है। जब नर्सरी में पौध तैयार हो रही होती है उस समय यह रोग पौधों में दिखाई देता है। बीज सड़ सकता है और मिटटी से निकलने से पहले ही पौधे मर सकते हैं। इस रोग के रोगाणु मृदा बीजों व रोगी पौधे के अवशेषों (मलबे) के अन्दर भूमि में सुषुप्ता अवस्था में रहते हैं और अगले मौसम में संक्रमण कर के पुनः रोग उत्पन्न कर देते हैं।

डाई–बैक (उल्टा सूखा) एवं एन्थाक्नोज (श्यामवर्ण): रोग के लक्षण मुख्य रूप से पके हुए फलों पर दिखते हैं। इसी कारण इस रोग को पके हुए फलों का सड़न भी कहा जाता है। इस रोग में चित्तियां वृताकार, जल शक्त और काले किनारे के साथ दबी हुई होती हैं। जैसे–जैसे रोग बढता है ये चित्तियाँ फैलती है, और इनसे गहरे फलन के साथ निश्चित मार्किंग बनती है। रोग के लक्षण वाले फल पकने से पहले ही गिर जाते है जिसके परिणामस्वरूप उपज में अधिक नुकसान होता हैं। यह कवक फल के डंठलों को भी संक्रमित कर सकती हैं।

डाई–बैक एवं एन्थाक्नोज रोग के पत्तियों एवं टहनीयों पर लक्षण

चूर्णिल फंफूद (पाउडरी मिल्डयू): शुष्क मौसम स्थितियों तथा गर्म जलवायु इस रोग के लिए अनुकूल होती हैं। इस रोग में पत्तियों की ऊपरी सतह पर रंगहीन धब्बे दिखाई देने लगते हैं। पत्तियों की निचली सतह पर सफेद धूसर चूर्णिल कवक की वृद्धि से ढ़क जाती हैं। यह रोग पुरानी से नई पत्तियों की ओर बढ़ता है और पर्ण–समूह का सूखकर झड़ना इसका प्रमुख लक्षण हैं।

रोग से ग्रसित पत्तियों की निचली सतह पर सफेद धूसर चूर्णिल कवक की वृद्धि

फ्यूजेरियम मुर्झान : यह रोग मुख्यतः खराब जल निकासी वाली मृदाओं में होता है। इस रोग में पौधे के मुरझाने तथा पत्तियों के ऊपरी तरफ और अंदर की तरफ मुड़ने से फ्यूजेरियम मुरझान का रोग का पता चलता है। इस रोग में पत्तियाँ पीली होकर मर जाती है। सामान्यतः यह रोग खेत के निचले तथा पानी रूकने वाले क्षेत्रों में दिखाई देता हैं और जल्दी ही सिंचाई के साथ पानी की क्यारियों के द्वारा फैल जाता हैं। उपरोक्त समय में जब भूमि के ऊपर लक्षण दिखाई देने लगते हैं तब तक पौधे की संवहनी प्रणाली विशेष रूप से निचले तने और जड़ें भी विकृत होने लगती हैं।

विषाणु रोग: इस विषाणु के कारण पत्तियों का आकार छोटा हो जाता है, जिससे पौधे बौने दिखाई देने लगते हैं। रोग बढ़ने की अवस्था में पौधों की बढ़वार रूकी हुई दिखाई देती है और पौधा झाडीनुमा एवं पौधे का माथा बंधा हुआ प्रतीत होता हैं व फूलों का उत्पादन भी कम हो जाता हैं। विकृत बीजों के साथ फल छोटे आकार के पैदा होते हैं। गंभीर संक्रमण होने पर फसल का पूरी तरह से नष्ट हो सकती हैं।

विषाणु से ग्रसित पत्तियाँ

मिर्च में प्रमुख कीट

चेपा : ये मुख्य रूप से शुष्क, बादलों वाले ठण्डे और आर्द्र मौसम की स्थितियों में प्रकट होते हैं जबकि भारी वर्षा इस कीट की कालोनियों को साफ कर देती हैं। ये कीट फरवरी से अप्रैल के दौरान तेजी से बढते हैं। ये नर्म प्ररोहों और पतियों की निचली सतह पर दिखाई देते हैं। रस को चूसते हैं तथा पौधों की वृद्धि को कम करते हैं। ये मीठा पदार्थ छोड़ते हैं जो कि चींटियों को आकर्षित करता है और काली फंफूद विकसित हो जाता है।

चेपा से ग्रसित पत्तियाँ

थ्रिप्स : थ्रिप्स छोटे एवं पतले कीट होते हैं जो नर्सरी के साथ मुख्य फसल में भी दिखाई देते हैं। इस कीट के वयस्क तथा निम्फ दोनों मिर्च की फसल को नुकसान पहुंचाते हैं तथा पत्ती के ऊतकों को खराब कर देते हैं और रस को चूसते हैं। यह कीट नर्म प्ररोहों, कलियों और फूलों पर आक्रमण किया जाता हैं जिसके फलस्वरूप वे मुड़ जाते हैं एवं विरूपित हो जाते हैं, पत्तियों का ऊपरी हिस्सा भी मुड़ जाता हैं। ग्रीष्म ऋतु के मौसम में नाशीजीवों का संक्रमण बढ़ जाता हैं।

थ्रिप्स से ग्रसित पत्तियाँ

सफेद मक्खी : इस कीट के शिशु व वयस्क दोनों पत्तियों से रस चूसकर पौधों को हानि पहुचाते हैं। कीड़ों के मधु बिन्दु पर काली फंफूद आने से पौधों का प्रकाश संश्लेषण कम हो जाता है। यह कीट मिर्च का वायरस जनित पत्ती मरोड़क रोग भी फैलाता है।

फल बेधक : यह कीट वर्षा ऋतु के बाद अक्टूंबर से मार्च के मौसम में बहुत सक्रिय होता हैं। इस कीट के लार्वा फलों का बेधन कर के उन्हें क्षतिग्रस्त करता है और फलियों के भीतरी हिस्सों से अपना भोजन प्राप्त करता हैं। शिमला मिर्च में यह किट, अप्रैल से जून के समय में फलों को नुकसान पहुंचाता हैं।

फल बेधक से ग्रसित फल

तम्बाकू की इल्ली : यह कीट वयस्क भूरे रंग का दिखाई देता हैं। इस किट के दूसरे और तीसरे इनस्टार के लार्वे छेद बनाकर मिर्च की फलियों में प्रवेश करते हैं और मिर्च के बीज से अपना भोजन प्राप्त करते हैं। प्रभावित फलियाँ गिर जाती हैं या सूखने पर सफेद रंग की हो जाती हैं। ये रात्रिचर होते हैं लेकिन इन्हें दिन के समय भी देखा जा सकता हैं।

नर्सरी अवस्था में समेकित रोग एवं कीट प्रबंधन

- मृदा जनित नाशीजीवों के लिए, मृदा सौर्यीकरण के लिए क्यारियों को 45 गेज (0.45 मिमी.) मोटाई की पॉलिथीन की शीट से तीन सप्ताह के लिए ढ़क कर रखें।

- स्यूडोमोनास फ्लुओरिसेन्स (10 ग्राम प्रति किग्रा. बीज) या ट्राईकोडर्मा विरिडी (10 ग्राम प्रति किग्रा. बीज) से बीजोपचार करें।
- मृदा जनित रोगों के नियंत्रण हेतु अंतिम जुताई के समय ट्राइकोडर्मा मित्र फफूँद 2.5 किलोग्राम प्रति हेक्टेयर की दर 100 किलोग्राम गोबर की सड़ी हुई खाद पर 15 दिन सवंर्धित कर भूमि उपचार करें।
- सर्दी के मौसम दिसम्बर– जनवरी के दौरान ठण्ड से बचाव के लिए नर्सरी की क्यारियों के एक सिरे पर खसखस का शेड लगाएं। क्यारियों को पाले से होने वाली क्षति से बचाने के लिए रात के समय पालीथीन की शीटों से ढक दें। तथापि दिन के समय इन शीटों को हटा दें जिससे कि वे सूर्य की गर्मी प्राप्त कर सकें।
- आर्द्र गलन (डैम्पिंग ऑफ) से बचने के लिए अच्छी निकासी वाली भूमि के लिए, भूमि स्तर से लगभग 10 से.मी. ऊपर की ओर उठी हुई नर्सरी की क्यारियाँ तैयार करें।
- डेपिंग ऑफ और चूसकनाशी जीवों का प्रबंधन करने के लिए ट्राईकोडर्मा से 10 ग्राम प्रति कि.ग्रा. बीज की दर से एवं इमिडाक्लोप्रिड 70 डब्ल्यू एस का 10 ग्राम प्रति किग्रा. बीज की दर से बीजोपचार करें जिससे कि प्रारंभिक स्थितियों में ही नाशीजीवों का प्रबंधन किया जा सकें।
- आर्द्र गलन के प्रबंधन के लिए आवश्यकतानुसार मेन्कोजेब 75 डब्ल्यूपी 0.3 प्रतिशत की दर से मृदा उपचार के लिए प्रयोग करें।

मुख्य फसल में समेकित रोग एवं कीट प्रबंधन

- चेपा, थ्रिप्स, हापर और सफेद मक्खी के विरूद्ध नीम के उत्पाद/एनएसकेई 5 प्रतिशत का छिड़काव करें। प्रतिरोपण के 15–20 दिनों के बाद थ्रिप्स के विरूद्ध एनएसकेई 5 प्रतिशत का छिड़काव 2–3 बार करें। यदि थ्रिप्स और सफेद मक्खी की संख्या फिर भी अधिक रहे तब फेंप्रोपथ्रिन 30 ईसी का 250–340 मिली प्रति हे/750–1000 लीटर पानी अथवा पाइरीप्रोक्सिफेन 10 ईसी का 500 मिली या स्पिनोसेड 45 एससी का 160 ग्राम प्रति हेक्टेयर/500 लीटर (थ्रिप्स के लिए) अथवा फिप्रोनिल 5 एससी का 800–1000 मिली प्रति हेक्टेयर की दर से 1000 लीटर पानी के साथ छिड़काव करें।
- अण्डे देने के दौरान वयस्कों की निगरानी के लिए एच. आर्मीजेरा/एच. लियूटेरा के लिए 5 प्रति हेक्टेयर की दर से फैरोमोन ट्रेप लगाएं।
- चेपा और सफेद मक्खी आदि के लिए 2 प्रति एकड़ की दर से डेल्टा जाल स्थापित करें।
- फल बेधक के लिए 1.5 लाख प्रति हेक्टेयर की दर से ट्राइकोगर्मा प्रजाति के परजीवी अण्डों को आवधिक रूप से छोड़ें।
- प्रारंभिक स्थिति में या जब और जैसे आवश्यकता होतो एचएएनपीवी/एसएलएनपीवी (250 एलई प्रति हेक्टेयर) (2×109 पीओबी) के 2–3 छिड़काव करें।
- फूल एवं फल की प्रारंभिक अवस्था के दौरान फल बेधक के लिए स्पिनोसेड 45 एससी का 60 मिली अथवा एमेमेक्टिन बेंजोएट 5 एसजी का 200 ग्राम अथवा इन्डोकसकार्ब 14.5 एससी का 400 मिली प्रति हेक्टेयर की दर से 500 लीटर पानी के साथ केवल आवश्यकतानुसार छिड़काव करें।
- फूल एवं फल बेधक के कारण क्षतिग्रस्त फलों को समय–समय पर हटाकर उनको नष्ट किया जाना चाहिए।
- रोपाई के समय पौधों को दस मिनट के लिए 5 मिली प्रति लीटर की दर से स्यूडोमोनास फ्लोरेसेंस के घोल में डुबोएं।
- यदि मुर्झान प्रतिवर्ष नियमित रूप से होता है तो फसल चक्र को अपनाया जा सकता है।
- पर्ण कुंचन रोग/मोजक काम्प्लैक्स से प्रभावित रोगी पौधों की समय–समय पर छंटाई करते हुए उन्हें नष्ट करना चाहिए।
- डाई–बैक के लिए स्यूडोमोनास फ्लोरोसेंस का सामान्य छिड़काव किया जा सकता हैं।
- विभिन्न रोगों के लिए स्यूडोमोनास फ्लोरोसेंस या ट्राईकोडर्मा (जैव नाशकनाशीजीव) का सामान्य रूप से छिड़काव किया जा सकता हैं।
- फल सडन और डाई बैक के प्रबंधन हेतु मेन्कोजेब 75 डब्ल्यूपी अथवा प्रोपिनेब 70 डब्ल्यूपी का 1.5–2.0 किग्रा. प्रति हेक्टेयर की दर से 750–1000 लीटर पानी के साथ या जिनेब 70 डब्ल्यूपी का 0.5 प्रतिशत की दर से छिड़काव व आवश्यकता आधरित डायफेनकोनाजोल 25 ई. सी. का 0.05 प्रतिशत अथवा क्लोरोथेलोनिल 75 प्रतिशत 1 ग्राम/लीटर या मायक्लोब्यूटॉनिल 10 डब्ल्यूपी का 0.04 प्रतिशत या केप्टान 70 प्रतिशत + हेक्साकोनाजोल 5 डब्ल्यूपी का 500–1000 ग्राम प्रति हेक्टेयर की दर से 500 लीटर पानी के साथ छिड़काव करें।
- चूर्णिल आसिता और फल सड़न के प्रबंधन के लिए आवश्यकता अनुसार हेक्सकोनाजोल 2 एस. सी. का 3 लीटर प्रति हेक्टेयर या टेब्युक्यूनाजोल 25.9 प्रतिशत ई. सी. का 500 मिली या एजोक्सीट्रोबिन 11 प्रतिशत + टेब्युक्यूनाजोल 18.3 प्रतिशत एस. सी. का 600–700 मिली प्रति हेक्टेयर की दर से 500–700 लीटर पानी के साथ छिड़काव करें।
- चूर्णिल आसिता के प्रबंधन के लिए एजोक्सीस्ट्रोबिन 23 प्रतिशत 0.5 मि.ली./लीटर या एजोक्सीस्ट्रोबिन 18.2 प्रतिशत + डायफेनकोनाजोल 11.4 प्रतिशत 1 मि.ली./लीटर डाइनोकेप 48 ई. सी. 1 मि.ली./लीटर या सल्फर 80 डब्ल्यूपी का 3.0 किग्रा प्रति हेक्टेयर की दर से 1000 लीटर पानी के घोल के साथ छिड़काव करें।

कैसे करें वैज्ञानिक तरीके से बीजों का रख-रखाव एवं भंडारण

भूरी सिंह एवं वर्षा कुमारी
उद्यानिकी एवं वानिकी महाविद्यालय, झालावाड़ एवं श्री कर्ण नरेन्द्र कृषि महाविद्यालय, जोबनेर

फसलों की कटाई के बाद उनके बीजों का रख–रखाव व भंडारण महत्वपूर्ण है, क्योंकि देश की बढ़ती जनसंख्या, प्राकृतिक आपदाएं, मौसम की अनिश्चितता तथा अच्छे बीजों की बढ़ती मांग के कारण फसल बुआई सुनिश्चित करना बहुत ही आवश्यक है। भंडारण में कीटों, फंजाई, बैक्टीरिया, चूहों, गिलहरी तथा पक्षियों आदि से हानि होती है। कटाई के बाद बीज के रख–रखाव एवं भंडारण पर विशेष ध्यान देने की आवश्यकता होती है। यद्यपि फसल की कटाई से पहले भी ऐसे अनेक कारक है, जो बीज की भंडारण क्षमता पर अपना प्रभाव डालते है। इन कारकों में उत्पादन के समय वातावरण का तापमान, वर्षा, आर्द्रता, उर्वरकों का प्रयोग एवं सिंचाई आदि प्रमुख कारक बीज की भंडारण क्षमता एवं गुणवत्ता को प्रभावित करते है। अतः किसानों एवं बीज उत्पादन करने वाली संस्थाओं को उत्पादन के दौरान भी ध्यान रखना बहुत आवश्यक होता है। फसल को पूर्ण रूप से पकते तथा सूखे मौसम की स्थिति में जब हवा में नमी कम रहती है और हवा पश्चिम से पूर्व की तरफ बह रही हो, तब काटना चाहिए। अन्यथा बीज में नमी बने रहने की संभावना रहती है, जिसके कारण भंडारगृह में कीटों के लगने की संभावना अधिक रहती है।

समुचित बीज भंडारण से बीज की गुणवत्ता में किसी प्रकार सुधार संभव नहीं है। केवल गुणवत्ता को संरक्षित किया जा सकता है। फसल की कटाई के बाद बीज की गुणवत्ता, उनकी अंकुरण क्षमता तथा उनके ओज पर जो भौतिक एवं जैविक कारक प्रभाव डालते है उनमें मौसम की आर्द्रता, मौसम का तापमान, बीज में नमी का प्रतिशत, भंडारगृह की दशा, कीट, चूहे, पंछी, माइट्स फफूंद एवं बैक्टीरिया आदि प्रमुख हैं। अधिकतम कीटों की क्रियाशीलता 11–20 प्रतिशत बीज में नमी तथा 27–37 डिग्री सेल्सियस तापमान पर होती है। इनकी क्रियाशीलता को रोकने के लिए विशेष प्रबंधन की आवश्यकता होती हैं, जिनका विवरण इस प्रकार है।

- सर्वप्रथम बीजों के रख–रखाव व भंडारण के लिए बीजों की भौतिक दशा को सुधारना बहुत आवश्यक है। बीज के लिए उगाई गई फसल को काटने के बाद उसकी भली प्रकार सफाई करना तथा अच्छी तरह से सुखाना चाहिए। सुखाने के बाद इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि सब्जियों के बीजों में 5–7 प्रतिशत नमी तथा खाद्यान्नों के बीजों में 8–10 प्रतिशत नमी होनी चाहिए। आमतौर पर 25–30 डिग्री सेन्टीग्रड तापमान एवं 8–10 प्रतिशत बीजों में नमी होने पर सभी प्रकार के बीजों को एक वर्ष तक सुरक्षित रखा जा सकता है। बीजों को सुखाने के बाद ग्रेडिंग करना अति आवश्यक होता है। इन सभी क्रियाओं को करते समय इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि इनमें किसी भी प्रकार का मिश्रण ना हो। मड़ाई के पश्चात बीज को सीधे भंडारगृह में रखने से उनमें कीटों का प्रकोप बहुत तेजी से होता है। बीज को ग्रेडिंग करने से पहले बीज संसाधन शाला (प्रोसेसिंग प्लान्ट) की सफाई अच्छी प्रकार से करनी चाहिए तथा दीवारों पर सफेदी भी कर देनी चाहिए।
- ग्रेडिंग करने से बीज की भंडारण क्षमता में सुधार होता है, क्योंकि ग्रेडिंग के दौरान छोटे, कटे हुए हल्के दाने एवं खरपतवार आदि के बीज अलग कर दिये जाए जिन पर कीट का प्रकोप अपेक्षाकृत अधिक व शीघ्र होता है। बीज संसाधन शाला में ग्रेडिंग से पूर्व कीटनाशी मेलाथियान 50 ई.सी. एक लीटर दवा 25 लीटर पानी में घोलकर एवं डेल्टामेथ्रिन 30 ई.सी. एक लीटर दवा को 100 लीटर पानी में घोलकर फर्श तथा दीवारों पर छिड़काव करना चाहिए। 5 लीटर दवा का घोल 100 वर्गमीटर क्षेत्रफल के लिए पर्याप्त रहता है। आमतौर से कीटों का आक्रमण बीज संसाधन शाला से पूर्व आरम्भ हो जाता है। इसलिए बीज की ग्रेडिंग में देरी नहीं करनी चाहिए। ग्रेडिंग के समय बीज में नमी की प्रतिशत मात्रा का विशेष ध्यान रखना चाहिए।
- यदि बीजों की ग्रडिंग करना संभव नहीं हो तो ग्रेडिंग से पहले बीज को एल्यूमिनियम फास्फाइड से घुमण करने के लिए एल्युमिनियम फास्फाइड 3 ग्राम की 2–3 गोली प्रति टन बीज के हिसाब से या एक गोली प्रति घनमीटर क्षेत्रफल के हिसाब से बोरिया के उपर रखकर तुरंत पॉलीथीन की चादर से इस प्रकार ढक देना चाहिए, ताकि वायु का आवागमन न हो तथा दरवाजों को भी जहां से हवा तथा कीट धुसने का अंदेशा हो, मिट्टी आदि से बंद कर देना चाहिए। घुमण करते समय इस बात का ध्यान रहे कि बीज में 10 प्रतिशत से अधिक नमी न हो अन्यथा बीज के अंकुरण पर विपरीत प्रभाव पड़ता है। सामान्यतः घुमण के कुछ दिन बाद ग्रेडिंग किया जा सकता है। बीज की ग्रडिंग एवं भंडारण के दौरान दीमक का प्रभाव दिखाई देने पर दीवारों, छतों एवं फर्श आदि क्लारोपायरीफास 2 मिली प्रति लीटर की दर से घोल बनाकर समय समय पर छिड़काव करते रहना चाहिए।
- बीज को ग्रेडिंग करने के बाद भंडारण ग्रह में रखना चाहिए। भंडारण ग्रह में बीज को रखने से पूर्व बीज भंडारण की अच्छी तरह सफाई आदि करनी चाहिए तथा भंडारण गृह में मैलाथियान या डेल्टामेथ्रिन का छिड़काव अवश्य करना चाहिए। भंडारण गृह इस प्रकार का होना चाहिए कि उसमें किसी प्रकार की खिड़की न हो तथा उसमें हवा का आवागमन रहित एक दरवाजा होना चाहिए। भंडारण गृह में एक या दो कमरों के आकार के अनुसार एक्जास्ट पंखा होना चाहिए। एक्जास्ट पंखा का प्रयोग तभी करना चाहिए, जब बीज गोदाम के बाहर का तापमान व आर्द्रता अंदर से कम हो।
- बीज को ग्रेडिंग करने के बाद भंडार गृह में रखने से पूर्व मैलाथियान 5 प्रतिशत 0.5 ग्राम प्रति किग्रा. की दर से बीज उपचारित करना चाहिए, लेकिन इस बात का ध्यान रखे कि उपचारित बीज किसी भी प्रकार खाने के उपयोग में न लाएं।
- भंडारण करते समय इस बात का भी ध्यान रखना चाहिए कि बीज

हमेशा नई बोरियों में ही भरना चाहिए। पुरानी बोरियों में बीज को भरने से कीटों के फैलने की संभावना रहती है तथा पुरानी बोरियों में पहले भरी गई फसल या प्रजाति के बीज चिपके रहते है, जिससे मिश्रण की संभावना भी बनी रहती है। यदि पुरानी बोरियों को प्रयोग करना आवश्यक हो, तो बोरियों की अच्छी प्रकार सफाई करके मैलाथियान अथवा डेल्टामेथ्रिन के घोल में डूबोकर दो दिन तक तेज धूप सुखाने के बाद ही इन बोरियों का प्रयोग करें। पुरानी बोरियों में एल्यूमिनियम फास्फाइड से घ्रुमण करने के बाद भी प्रयोग किया जा सकता है।

- भंडारण गृह में बीज के रखते समय इस बात का भी ध्यान रखना चाहिए कि बिना ग्रेडिंग बीजों के साथ नहीं रखा जाए। आमतौर पर एक फसल का बीज ही एक साथ रखना चाहिए, क्योंकि प्रत्येक फसलों कि बीजों की भंडारण क्षमता अलग–अलग होती है। तिलहन वाली फसलों में वसा अधिक होने के कारण इनकी भंडारण क्षमता सबसे अधिक होती है तथा दलहन वाली फसलों में प्रोटीन की मात्रा अधिक होने के कारण इनकी भंडारण क्षमता सबसे कम होती है। गेहूं, जौ, मक्का, ज्वार, बाजरा आदि बीजों में कार्बोहाइड्रेट अधिक होने के कारण इनकी भंडारण क्षमता दलहन से अधिक एवं तिलहन से कम होती है। अतः कुशल प्रबंधन के लिए अनाज, दलहन, तिलहन एवं सब्जियों के बीजों के लिए अलग–अलग भंडार गृह होने चाहिए।

- भंडार गृह में बीज को रखते समय इस बात का ध्यान रखे कि बीज की बोरियों को रखते समय लकड़ी के कैरेट के बीज गोदाम की दीवारों से 1 से 1.5 फीट दूरी पर रखकर बीज की बोरियों को रखें। बोरियां रखते समय इस बात का भी ध्यान रखें कि उंचाई में 8–10 बोरियां ही रखे।

- भंडारण के लिए पैकिंग भी महत्वपूर्ण है। सामान्य अनाज, दलहन, तिलहन वाली फसलों के बीज को जूट बैग या कपड़े के बैग में पैक करना चाहिए तथा सब्जियों एवं फूलों के बीजों को एल्यूमिनियम फोइल पाउच पॉलिथीन बैग, पेपर बैग एवं कार्ड बोर्ड बॉक्स का प्रयोग उचित रहता है, लेकिन एल्यूमिनियम फोइल पाउच में बीज को पैक करने से पूर्व यह सुनिश्चित कर ले कि बीज में 5–6 प्रतिशत से अधिक नमी न हो। अन्यथा बीज के खराब होने की संभावना रहती है। बीज की पैकिंग से पहले किसी फफूंदीनाशक जैसे थायराम या कैप्टान आदि से 2 ग्राम प्रति किग्रा. बीज की दर से उपचारित करके ही बिक्री करें।

तालिका 1: भंडारण गृह में लगने वाले कीट एवं माइक्रोबस और उनकी क्रियाशीलता

भण्डारण कीट	तापक्रम वृद्धि के लिए डिग्री सेल्सियस	अनुकूलतम तापमान वृद्धि के लिए	आपेक्षिक आर्द्रता प्रतिशत
कीट	21–42	27–37	30–90
माइट्स	8–31	19–30	60–100
फंगस	8–80	20–40	60–100
माइक्रोबस	8–40	26–28	90–100

तालिका 2 : भंडारण गृह में लंबी अवधि के लिए बीज के लिए तापमान व आर्द्रता

भण्डारण की अवधि	भण्डारण गृह का तापमान	आर्द्रता प्रतिशत
1 वर्ष	20–25	45–50
1–3 वर्ष	15	45–50
3–5 वर्ष	2–4	40–50
5 वर्ष से अधिक	10	40–45

तालिका 3 : भंडार गृह में धान्य बीजों के लिए बीज नमी प्रतिशत

भण्डारण की अवधि	बीज नमी प्रतिशत (30 से 32 डिग्री तापमान पर)
4 वर्ष	8 से10
2 वर्ष	9 से 11
1 वर्ष	10 से 12
0.5 वर्ष	11से13

मिट्टी एवं जल संरक्षण का महत्व

मनोज, हरफूल मीणा, मनोज कुमार शर्मा, राजेन्द्र कुमार यादव एवं विनोद कुमार यादव
कृषि अनुसंधान केन्द, एवं कृषि महाविधालय, उम्मेदगंज, कोटा

जीवन वही सम्भव है जहाँ स्वच्छ जल, शुद्ध वायु तथा पोषक तत्वों से भरपूर मिट्टी उपज हेतु उपलब्ध हो। मनुष्य द्वारा वर्तमान पीढ़ी को ध्यान मो रखते हुए जल का उपयोग दोहन तथा मृदा से अधिकाधिक उत्पादन प्राप्त करने के प्रयास किये जाते रहे। मिट्टी हमारे भरण–पोषण का महत्त्वपूर्ण माध्यम है। हमारा दायित्व है कि भूमि एवं जल के उपयोग, संरक्षण के साथ–साथ पर्यावरण संतुलन पर व्यापक जन चेतना जगाये तथा इनके संरक्षण में प्रभावी भूमिका निभायें।

मृदा अपरदन : अपरदन से तात्पर्य मृदा एवं मृदा कणों के विस्थापन और परिवहन से होता है, जो जल, वायु हिम या गुरुत्व बलों की सहायता से सम्पन्न होता है। मृदा अपरदन को सम्पन्न करने वाले इन बलों में से जल और वायु सबसे महत्त्वपूर्ण होते हैं। बाढ़ द्वारा बने मैदान और सागर तटीय मैदानों का निर्माण पर्वतों के अपक्षीय होने से होता है। पर्वतीय भागों के अपक्षीण होने की यह प्राकृतिक क्रिया निरंतर और मन्द गति से होती रहती है।

जल द्वारा मृदा अपरदन : भूमि की ऊपरी सतह से मिट्टी का एक स्थान से दूसरे स्थान तक विस्थापन और निष्कासन जल की क्रियाओं द्वारा होता है। इस तरह के मृदा अपरदन में भूमि के पृष्ठ से मृदा कणों का पहले विस्थापन होता है और फिर वे मृदा कण उस स्थान से हट कर दूसरे स्थान तक प्रवाहित हो जाते हैं। सामान्य रूप से वर्षापात और नदी–नाले के प्रवाह आदि के माध्यम से मृदा कण दूर बह जाते हैं।

मृदा विस्थापन : मृदा कणों का विस्थापन सामान्य रूप से वर्षा की बूँदों के प्रभाव के कारण होता है। जब वर्षा तेज होती है तो मृदा कण भूमि सतह से अलग हो जाते हैं, मृदा कण उछल कर दूर गिर जाते हैं। मृदा कणों के इस तरह उछलने से भारी मात्रा में मृदा का अपरदन होता है। वर्षा के लगभग दो–तीन मिनट बाद मृदा कणों का उछलना सबसे अधिक होता है। उस समय भूमि पृष्ठ पानी की एक पतली परत से ढक सी जाती है। जैसे ही मृदा कणों का आकार बढ़ता है मृदा कणों की विस्थापनशीलता बढ़ जाती है।

मृदा परिवहन : मृदा कण वर्षा की बूँदों के प्रभाव से अपने स्थान से विस्थापित होकर बिखर जाते हैं। मृदा कण अपवाह जल में घुलकर पृष्ठ अपवाह द्वारा स्थानान्तरित हो जाते हैं।

निलम्बन : आमतौर से बहते पानी से या भरे हुए जल में मिट्टी जल में बैठती है और निलंबित तलछट के रूप में जम जाती है। यह प्रक्रिया जल प्रवाह के सम्पर्क के बिना एक निश्चित अवधि में होती रहती है।

उच्छलन : उच्छलन द्वारा तलछट का संकलन ऐसे क्षेत्रों में होता है जहाँ नदी–नाले या सरिता अथवा जल प्रवाह के किनारे–किनारे मृदा कण उछलते है। मृदा कणों के उछलने की ऊँचाई मृदा कणों के घनत्व एवं बाढ़ के घनत्व के अनुपात के सीधे समानुपाती होती है।

पृष्ठ विसर्पण: सरिता, नदी, नाले या जल प्रवाह के तल के लगातार सम्पर्क में रहने से मृदा कण संचलित होते हैं। प्रवाह के तल खिंचवा के साथसाथ मृदा कण ढाल के नीचे की ओर बह जाते हैं।

परत अपरदन : जब अपवाह जल किसी भूमि क्षेत्र से, जहाँ सामान्य और चिकना ढाल पाया जाता है एक समान गहराई वाले पानी की परत के रूप में बहता है तो उससे शीट या परत अपरदन होता है। ऐसी दशाओं में सापेक्ष रूप से लगभग एक समान मात्रा में ढाल होता है, मिट्टी के सभी भागों में एक समरूप मात्रा में मृदा की हानि होती है।

नाली अपरदन : नाली या नलिका अपरदन ऐसे भू–भागों में पाया जाता है जहाँ पानी काफी मात्रा में जमा हो जाता है और अपवाह के रूप में बहकर मृदा को विस्थापित करके एक स्थान से दूसरे स्थान को बहा ले जाता है।

रिल अपरदन: रिल अपरदन के अन्तर्गत अपवाह जल के द्वारा मृदा का निष्कासन होता है। रिल अपरदन से मृदा का निष्कासन उथली नालियों के बन जाने से होता है। भूमि में उथली नालियाँ सामान्य जुताई से भर जाती है।

गली अपरदन : ढाल वाली भूमियों में वर्षा की तीव्रता और अपवाह जल के अधिक वेग से छोटी–छोटी नालियाँ बड़ी–बड़ी नालियों में परिवर्तित हो जाती है। ऐसे भू–भागों में जहाँ छोटी नालियाँ बहुत गहरी हो जाती है, वहाँ जुताई नहीं की जा सकती।

सरिता अपरदन : सरिता अपरदन में सरिता की तलहटी से मृदा सामग्री का कटाव होता है तथा बहने वाले जल के प्रवाह से जोर से सरिता के तटबंध टूट जाते हैं। इसी तरह खेतों में जो बंध या बांध आदि बनाये जाते हैं वे छोटी–छोटी सरिताओं के प्रवाह के बल से टूट जाते हैं।

जल प्रपात द्वारा अपरदन: पृष्ठ अपरदन करने वाला अपवाह क्षेत्र ढलवां भूमि में कभी–कभी छेद कर देता है, ऐसे छेद जब बड़े हो जाते हैं तो वहाँ पानी काफी मात्रा में सीधे गिरने लगता है और तब छोटे जल प्रपात और झरने बन जाते हैं।

वायु द्वारा अपरदन : वायु द्वारा मृदा का अपरदन शुष्क एवं अर्द्धशुष्क क्षेत्रों में सबसे अधिक होता है। वायु द्वारा होने वाला मृदा अपरदन निश्चित रूप से शुष्क मौसम के प्रभाव से होने वाली एक प्रक्रिया है और यह प्रक्रिया तब और तीव्र हो जाती है, जब सम्बन्धित भू–भाग की मृदा ढीली होती है, सुखी होती है तथा पर्याप्त मात्रा में मृदा कण बारीक प्रभावों में विभाजित होते हैं।

वायु की सक्रियता द्वारा मृदा का संचलन : मृदा का विस्थापन द्वारा संचलन और दूसरा वायु की सक्रियता द्वारा मृदा कणों का परिवहन है। वायु वेग में यह प्रवणता वायुबल के परिमाण का निर्धारण करती है।

मृदा कणों का परिवहन : सतह से विस्थापित मृदा कणों का परिवहन वायु के विभिन्न वेग स्तरों पर निर्भर करता है। सामान्य रूप से वायु के प्रभाव से मृदा कणों का तीन प्रकार से संचलन होता है।

1. **उच्छलन:** मृदा कणों पर तथा अन्य कणों के साथ मृदा कणों के टकराव पर वायु के प्रत्यक्ष दाब के प्रभाव के फलस्वरूप उच्छलन होता है।

2. **निलम्बन:** बहुत बारीक धूल के कणों के परिवहन की क्रियाविधि वायु द्वारा वास्तविक निलम्बन में सम्पन्न होती है।

3. **पृष्ठ सर्पण:** पृष्ठ सर्पण मृदा कणों का ऐसा संचलन है, जो उच्छलन के दौरान मृदा कणों के पतन के प्रभाव से होता है। पृष्ठ सर्पण द्वारा मृदा कणों के संचलन से भूमि की सतह प्रभावित होती है तथा मृदा समुच्चय भंग हो जाते हैं।

मृदा अपरदन को प्रभावित करने वाले कारक : मृदा अपरदन को प्रभावित करने वाले कारकों में जलवायु, मृदा गुण, स्थलाकृति, वनस्पति मृदा प्रबंध और अन्य सम्बन्धित कारक है ।

जलवायु: अपरदन को प्रभावित करने वाले जलवायु, परिवर्तियों या कारकों में वर्षण, वायुवेग तापमान, आर्द्रता आदि उल्लेखनीय है। वर्षण सबसे प्रबल कारक है, जिससे उच्छलन और पृष्ठ अपवाह के माध्यम से अपरदन होता है।

स्थलाकृति: भूमि क्षेत्र में ढाल पाये जाने से अपरदन शीघ्र हो जाते हैं। इससे जल का वेग बढ़ जाता है, भूमि क्षेत्र के ढाल में थोड़े से अन्तर से भी बड़ी हानियाँ देखी जाती है।

मृदा गुण: किसी क्षेत्र की अपरदनशीलता मृदा और उसके गुणों पर निर्भर करती है। मृदा की अपरदनशीलता मुख्य रूप से क्षेत्र की मिट्टी के संगठन, संरचना, जैव पदार्थ और मटियार मिट्टी की प्रकृति पर निर्भर करती है।

वनस्पति: खेती करने से तथा विभिन्न प्रकार के फसलोत्पादन और अत्यधिक भूमि उपयोगों से अपरदन अधिक होने लगता है और भूमि पर वनस्पति के रहने से अपरदन रुकता है। कृषि फसलों की अपेक्षा वन और घासें भूमि को अधिक संरक्षण प्रदान करते हैं।

अन्य कारक: अनेक बार मवेशी पशुओं तथा जानवरों के आने–जाने चलने से मिट्टी का अपरदन होता है, भूमि की सतह, मवेशी पशुओं तथा बकरियों तथा अन्य जानवरों के खुरों से ऊबड़–खाबड़ हो जाती है ।

मृदा अपरदन के प्रभाव

मिट्टी की क्षति : अपरदन के दौरान मिट्टी अपने स्थान से कट कर पानी के साथ बह कर दूरदराज के स्थानों पर चली जाती है और वहाँ जमा हो जाती है।

मृदा गठन का परिवर्तन : वर्षापात के प्रभाव से मृदासमुच्चय जैसे ही फिर जाते हैं, रेत, सिल्ट और मृत्तिका कण जैव पदार्थ के साथ तथा अन्य जोड़ने वाले कारक अपवाह जल के साथ तलछट के रूप में बह जाते हैं।

पोषक तत्वो की हानि: अपरदित मृदा सामग्री में अधिकतर ऊपरी मृदा होती है। इसमें उर्वर, पोषक तत्व और जैव पदार्थ होते हैं, जो बाढ़ से बहकर अन्यत्र जमा हो जाते हैं।

जलाशयों मे तलछट का जम जाना : जलाशय का पानी शांत होता है इसलिये नदी नालों द्वारा लाई गई मिट्टी उसमें बैठ जाती है, निलम्बन में मिलकर जैव पदार्थ, मृत्तिका और पर्याप्त मात्रा में सिल्ट जलाशय के निचले भाग में पहुँच जाते हैं।

बाढ़ : बाढ़ के कारण तीव्र अवसादन की दशाओं में नदियों में तलहटी के अन्दर मोटी रेत और बजरी आदि जमा हो जाती है जो आसानी से निकाली या हटायी नहीं जा सकती है क्योंकि उसमें कुछ न कुछ वनस्पतियाँ उग जाती है, जिससे नदियों की तलहटी भरती जाती है।

फसलों की हानि: जल के अपवाह या तीव्र वायु अपरदन से प्रारम्भिक अवस्था में ही फसलों की हानि काफी हो जाती है। अनेक बार तीव्र वर्षा और आंधी चलने से खड़ी फसलें बर्बाद हो जाती है।

अन्य कारक : धूल भरी आंधियाँ बहुत हानिकारक होती है। इससे न केवल मानव और पशुओं के स्वास्थ्य को दीर्घकालीन नुकसान होता है, आस–पास के घरों खाद्यान्नों आदि को भी नुकसान होता है।

राष्ट्रीय कृषि बाजार - किसानो के लिए हो रहा एक वरदान साबित

रोहताश कुमार, शुभम, ऋतम्भरा एवं गगनदीप सिंह
चौधरी चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार, भाकृअनुप–भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली एवं कृषि विश्वविद्यालय, कोटा

भारत एक कृषि प्रधान देश है, देश के किसान फसलों के उत्पादन और उत्पादकता में कहीं भी पीछे नहीं है। किसान नई तकनीकों को प्रयोग में लेन में, नई किस्मों के उत्पादन में और नए तरीकों को जानने में बढ़–चढ़ कर हिस्सा लेते है। किन्तु किसानों को कृषि उत्पादों की विपणता में समस्या होती है। उत्पाद की बिक्री के लिए किसानो को बहुत सी कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है, जैसे कि बिचोलियो पर निर्भरता, अपने उत्पाद के लिए कम कीमत मिलना और मंडी की अधूरी जानकारी होना, आदि।

इस समस्या से निपटने के लिए कृषि उत्पादों की ऑनलाइन बिक्री किसानों को एक नई राह प्रदान करता है। इन्ही समस्याओं को मद्देनजर रखते हुए एवं किसानों की आय को दोगुना करने के लिए भारत सरकार द्वारा 14 अप्रैल 2016 में देश में एक ऑनलाइन मार्केटिंग प्लेटफार्म लांच किया गया। ई–नाम (राष्ट्रीय कृषि बाजार) – एक ऑनलाइन मार्केटिंग पोर्टल है। यह पोर्टल देश में विभिन्न कृषि उपजों को बेचने के लिए एक ऑनलाइन ट्रेडिंग प्लेटफार्म है। ई–नाम पोर्टल का मुख्य लक्ष्य सम्पूर्ण भारत में सभी कृषि उत्पाद विपणन समितियों (एपीएमसी) को एक सिंगल नेटवर्क से जोड़ना है। इसका उद्देश्य राष्ट्रीय स्तर पर कृषि उत्पादकों के लिए एक बाजार उपल्बध करना है। जैसे कोई राजस्थान का किसान अगर अपनी उपज बिहार में बेचना चाहता है तो उसके लिए ई–नाम की मदद से अपनी कृषि उपज को ले जाना और उसकी ब्रिक्री करना आसान हो गया है।

अब 'कृषक उपहार योजना' प्रदेशभर के किसानों के लिए फायदेमंद साबित होगी। कृषि उपज मंडियों में 10,000 रुपये से अधिक की फसल बेचने पर पुरस्कार राशि दी जाएगी। कृषि मंडी में फसल लेकर आने वाले किसानों के लिए कृषि विपणन निदेशालय ने कृषक उपहार योजना जारी की है। इस योजना का लाभ किसान को ई नाम पोर्टल से फसल मंडी में लेकर आने, उसकी निलामी कराने और फिर इसी प्लेटफार्म के माध्यम से फसल की राशि अपने खाते में ट्रांसफर कराने पर मिलेगा। स्कीम में किसानों को 10 हजार से लेकर ढाई लाख रुपए तक की राशि इनाम में मिल सकती है। कृषक उपहार योजना का उद्देश्य किसानों को ऑनलाइन प्रक्रिया से जोड़ना है। इस प्रक्रिया से जोड़ने के लिए कृषक उपहार योजना लागू की गई है। यह योजना 1 जनवरी से 30 दिसंबर तक मान्य होगी। इसमें हर छह महीने में पुरस्कार दिए जाएंगे। किसान जैसे ही अपनी फसल लेकर मंडी में प्रवेश करेगा, उसका गेट पास ई–पोर्टल के नाम से काटा जाएगा। उसी गेट पास के आधार पर फसल की नीलामी होगी। उस नीलामी की सारी जानकारी ई नाम पोर्टल पर डाली जाएगी। उसी पोर्टल के माध्यम से फसल के रुपए लेने पर उन्हें ई–उपहार दिया जाएगा। इस ई–उपहार की लॉटरी मंडी, खंड व राज्य स्तर पर अलग–अलग निकाली जाएगी। यानी एक किसान को छह महीने में तीन बार लॉटरी में शामिल होने का अवसर मिलेगा।

ई–कूपन जारी किए जाएंगे : इस पुरस्कार का विजेता बनने के लिए कृषि उपज मंडी में किसानों को कूपन दिए जाएंगे। यह योजना सरकार द्वारा किसानों को प्रोत्साहित करने के लिए शुरू की गई है। राजस्थान सरकार ने कृषि विपणन निदेशालय, जयपुर के तहत राज्य की सभी बाजार समितियों के माध्यम से राज्य के किसानों के लिए 'कृषक उपहार योजना लागू की है। इसमें मंडी समितियों से किसानों को उनकी कृषि उपज मंडियों में बेचने एवं मण्डी समितियों में संचालित करने के लिए ई–नाम लाया गया है। इस परियोजना के तहत ई–भुगतान प्राप्त करने के लिए नि:शुल्क ई–उपहार कूपन जारी किए जाएंगे।

इन 3 कैटेगरी में मिलेगा इनाम

- इस योजना के तहत प्रत्येक छह माह में मंडी स्तर पर गेट पास की बिक्री पर्चियों और ई–भुगतान की बिक्री पर्ची पर प्रथम पुरस्कार 25–25 हजार रुपये होंगे। वहीं द्वितीय पुरस्कार 15–15 हजार रुपये और तृतीय पुरस्कार 10–10 हजार रुपये होंगे।
- वहीं प्रखंड स्तर पर प्रत्येक छह माह में प्रथम पुरस्कार 50 हजार, द्वितीय पुरस्कार 30 हजार व तृतीय पुरस्कार 20 हजार होगा।
- इसके अलावा, राज्य स्तर पर वर्ष में एक बार प्रथम पुरस्कार 5 लाख रुपये होगा, द्वितीय पुरस्कार 1.5 लाख और तृतीय पुरस्कार 1 लाख रुपये होंगे।

ई–नाम पोर्टल से किसानो को मिलने वाली सुविधाएं

- किसानों, व्यापारियों और खरीदारों को ऑनलाइन ब्रिक्री /व्यापार की सुविधा देता है।
- किसानों को विभिन्न मंडियों में कृषि उपज की कीमत की जानकारी देता है, जो किसान को बेहतर कीमत पाने में मदद करता है।
- उपज की सही ब्रिक्री के लिए सुविधा प्रदान करता है।
- ई–नाम प्लेटफार्म पर, किसान मोबाइल एप्प के जरिये या पंजीकृत कमीशन प्रतिनिधि के माध्यम से सीधे व्यापार करने का विकल्प चुन सकते है।
- उपज आगमन और व्यापर के सन्दर्भ में प्रत्येक जानकारी डैशबोर्ड पर मिलती है।

- किसान और व्यापारियों के लिए 8 भाषाओं में लेन देन की सुविधा है।
- ई–नाम मोबाइल एप्प पर किसानों को एडवांस एंट्री की सुविधा मिलती है।
- ऑनलाइन भुगतान करने का विकल्प मिलता है। किसानों को अपनी उपज की ऑनलाइन ब्रिक्री के लिए ई–नाम मोबाइल एप या वेब पोर्टल पर पंजीकरण करना पड़ता है।

पंजीकरण प्रक्रिया इस प्रकार है

- पहले आपको www.enam.gov.in की ऑनलाइन वेबसाइट पर जाना होगा।
- वेबसाइट के होमपेज पर एक इ–मेल अड्रेस के साथ पंजीकरण पर क्लिक करना होगा।
- एक टेम्परारी लॉगिन आईडी इ–मेल अड्रेस पर दे दी जाएगी।
- ई–नाम वेबसाइट पर रजिस्टर करने के लिए केवाईसी विवरण और दूसरे जरुरी दस्तावेज देने होंगे।
- फिर एपीएमसी आवेदक के केवाईसी को मंजूरी देता है।
- इस पूरी प्रक्रिया के बाद आवेदक कृषि उपज के लिए व्यापार शुरू कर सकता है।

ई–नाम पर लेखांकित व्यापार

- कुल लेखांकित व्यापार 4.31 करोड़ मीट्रिक टन
- लेखांकित कुल व्यापार का मूल्य–1,30,753 करोड़
- व्यापार योग्य वस्तु अधिसूचित 175 वस्तु

ई–नाम से किसानों को मिलने वाले लाभ

- किसान और खरीदार के बीच कोई बिचोलिया नहीं होगा।
- किसानों के साथ साथ ग्राहकों को भी इसका पूरा लाभ मिलेगा।
- किसानों को उत्पाद की बेहतर कीमत प्रदान करेगा।
- अग्रिम प्रवेश की सुविधा के माध्यम से बाजार में आने वाले किसानों के समय की बचत होगी।
- किसान अपने व्यापार की प्रगति को पोर्टल पर देख सकता है।
- कीमत की वास्तविक बोली की प्रगति किसानों को उनके फोन के एप पर दिखाई देती है।
- किसानों को प्रत्येक मंडी की समय पर पूरी जानकारी मिलेगी।

निष्कर्ष

एक किसान की सबसे बड़ी समस्या एक अच्छा बाजार और अपने उत्पाद की बेहतर कीमत प्राप्त करना है। किसानों को प्रोत्साहित करने के लिए सरकार ने 'कृषक उपहार योजना' शुरू की है। इसमें कृषि उपज मंडी में ई–कूपन जारी किए जाएंगे। जिसमें किसानों को 10 हजार तक की फसल बेचने पर 10 हजार से ढाई लाख रुपये तक का इनाम पा सकेंगे। ई–नाम यहाँ किसानों के उत्पादों की सही से ब्रिक्री करवाने में सभी सुविधाएँ दे रहा है। राष्ट्रीय कृषि बाजार उत्पाद की बिक्री से सम्बंधित सभी कठिनाइयों को हल करता है। इसलिए कृषि उत्पादों की बिक्री सम्बंधित समस्याओं में ई–नाम एक रामबाण इलाज साबित हो सकता है।

❋❋❋

''अभिनव कृषि'' अंकवार प्रकाशित होने वाली विषय सामग्री

अंक	प्रकाशन माह	विषय–विशेषांक
1	**जून**	खरीफ फसल विशेषांक, खरीफ फसलों में समन्वित कीट, रोग व खरपतवार, प्रबंधन, मृदा एवं जल संरक्षण
2	**सितम्बर**	रबी फसल विशेषांक, रबी फसलों में समन्वित कीट, रोग व खरपतवार प्रबंधन, उन्नत कृषि उपकरण
3	**दिसम्बर**	सिंचाई प्रबंधन, मृदा स्वास्थ्य प्रबंधन, जैविक खेती, समन्वित कृषि प्रणाली, आधुनिक डेयरी, मधुमक्खी पालन, मशरूम उत्पादन, एकीकृत पोषक तत्व प्रबंधन
4	**मार्च**	जायद खेती, संरक्षित खेती, हाई–टेक बागवानी, फल–फूल, सब्जी उत्पादन, मृदा प्रबंधन, पशुपालन प्रबंधन, फल सब्जी परिरक्षण एवं खाद्य प्रसंस्करण

सहभागी विधि से अनुश्रवण एवं मूल्यांकन

सूर्या राठौड़ एवं मनमीत कौर
भाकृअनुप–राष्ट्रीय कृषि अनुसंधान प्रबंध अकादमी, हैदराबाद एवं कृषि महाविद्यालय, स्वामी केशवानंद राजस्थान कृषि विश्वविद्यालय, बीकानेर

दैनिक बोलचाल की भाषा में मूल्यांकन का मतलब है क्या पाया और क्या खोया जबकि अनुश्रवण का तात्पर्य है, इस बात का ध्यान रखना कि कार्य सुचारु रूप से चल रहा है या नहीं। कहने का तात्पर्य है कि व्यक्ति विशेष द्वारा जो दैनिक कार्य किये जाते है वे उद्देश्यपूर्ण होते है और इन्हीं उद्देश्यों की पूर्ति के लिए वह दिन–रात इधर–उधर भाग–दौड़ करता है, मेहनत करता है। यह तो रही सामान्य बात और यदि हम प्रसार शिक्षा के सन्दर्भ में देखे तो प्रसार कार्यकर्ता द्वारा ग्रामीण क्षेत्रों में जो भी कार्य किया जाता है, उसकी सफलता और असफलता ही मूल्यांकन शब्द को परिभाषित करती है।

मूल्यांकन को तो हम एक सुनियोजित प्रक्रिया मानते है जिसके द्वारा 'किसी चीज'के बारे में यह निश्चित किया जाता है कि उसकी क्या मान्यताएं हैं, कितना प्रभावकारी हैं और उसका क्या महत्व है। प्रसार कार्यक्रमों का मूल्यांकन करना एक अत्यावश्यक चरण है। जो प्रसार कार्यक्रम बनाया गया, लागू किया गया, तब यह जानना अति–आवश्यक है कि वह कितना प्रभावशाली रहा अर्थात उस कार्यक्रम के माध्यम से कृषकों ने कौन–कौन सी नई बातों को ग्रहण किया, तथा उनको कितना लाभ हुआ? यदि कोई लाभ नहीं हुआ तो क्या कारण रहे कि कृषक उसे ठीक ढंग से नहीं अपना सके। क्या हमारे प्रसार कार्यकर्ता ने उसे ठीक ढंग से संचालित किया ? तो क्या कारण है कि कृषक उस कार्यक्रम में रूचि नहीं ले रहे ? आदि बातों का क्रमशः अध्ययन करना ही प्रसार कार्यो का मूल्यांकन है। जहाँ तक अनुश्रवण का सवाल है, इसके द्वारा विभिन्न कार्यो का सुचारु रूप से चलना सुनिश्चित किया जाता है।

मूल्यांकन के उद्देश्य

1. कार्यक्रमों की सफलता व असफलता के कारणों को जानना, साथ ही उन कारणों की भी जानकारी रखना जो कार्यक्रम की सफलता में बाधक हैं।
2. कार्यकर्ताओं को अपने उद्देश्यों की समालोचना करने के लिए प्रेरित करना।
3. उद्देश्यों की प्राप्ति हेतु यदि आवश्यक हो तो अपने कार्यक्रमों में कुछ परिवर्तन ला सके।
4. कार्यक्रमों के गुण–दोषों का पता चलता हैं।
5. मूल्यांकन से ग्रामीण जनता व कार्यकर्ता दोनों का आत्मविश्वास बढ़ता हैं।
6. मूल्यांकन से यह भी जानकारी होती है कि कितना व्यय हुआ तथा कितनी उपलब्धि हुई।
7. प्रयोग की नई शिक्षण विधियों की सार्थकता का ज्ञान होता हैं।

मूल्यांकन के प्रकार

मूल्यांकन से हम पूर्व निश्चित उद्देश्यों के अनुरूप चल रहे कार्यकर्मो की उपलब्धियों तथा कमियों का आंकलन कर सकते हैं तथा भविष्य के लिए सही दिशा का चुनाव कर सकते हैं। मूल्यांकन को निम्न प्रकारों में बांटा जा सकता है।

1. **स्वयं मूल्यांकनः** इस प्रकार के मूल्यांकन प्रसार कार्यकर्ता स्वयं के द्वारा करता हैं। मूलरूप से दिन–प्रतिदिन के कार्य व क्रियान्यवन या अपनाई गयी शिक्षण प्रणाली की आलोचना वह स्वयं ही करता है। इसका उद्देश्य स्वयं की कार्य प्रणाली में सुधार करना है। ऐसा करने के लिए पूर्व निर्धारित आधार को भी अपनाया जा सकता है।
2. **आंतरिक मूल्यांकनः** आंतरिक मूल्यांकन को कई रूपों में किया जा सकता है। उदाहरणस्वरूप विभाग में एक ऐसे उपविभाग की स्थापना जो मूल्यांकन करे, कर्मचारियों का मासिक, त्रैमासिक या वार्षिक प्रतिवेदन से या कर्मचारियों की बैठक में बातचीत से, कार्य क्षेत्र का समय–समय से भ्रमण करके आदि।
3. **बाह्य मूल्यांकनः** जब किसी कार्यक्रम का मूल्यांकन उस विभाग के कर्मचारिओं या विभाग के अन्य अधिकारियों द्वारा न करके बाहरी व्यक्ति या संस्था या विभाग द्वारा किया जाता है तो उसे बाह्य मूल्यांकन कहते हैं।

मूल्यांकन के चरण

1. **मुख्य उद्देश्यों का निर्धारणः** उद्देश्यों का निर्धारण मूल्यांकन के प्रसार के अनुसार होता है। ग्रामीण विकास कार्यक्रम के लिए वार्षिक, अर्द्ध–वार्षिक एवं मौसम के अनुसार उद्देश्यों को बनाया जाता है। उदेश्यों का निर्धारण अल्पसमय, अधिक समय के लिए एवं विभिन्न प्रकारों का होता है।
2. **उद्देश्यों को स्पष्ट करना तथा अधिक विशिष्ट बनानाः** मुख्य उद्देश्यों को माध्यमिक उद्देश्य में विभाजित करने के बाद इन माध्यमिक उद्देश्यों को अधिक स्पष्ट तथा विशिष्ट बनाया जाता है कि ये विशिष्ट उद्देश्य किस मुख्य उद्देश्यों को पूरा करेंगें।

उदाहरणार्थः

- **मुख्य उद्देश्यः** ग्रामवासियों का रहन–सहन का स्तर ऊँचा उठाना।
- **माध्यमिक उद्देश्यः** फसल की पैदावार बढ़ानाधोहूं की पैदावार बढ़ाना।
- **विशिष्ट उद्देश्यः** किसानों को केचुँए की खाद बनाने के लिए प्रेरित करना।

3. **पहचान सूचक बनानाः** परिवर्तनों को मालूम करने के लिए आवश्यक है कि वर्तमान प्रमाणों को एकत्र किया जाये। जैसे–ग्रामों में हमारा उद्देश्य बच्चों के वजन में बढ़ाव, जो पहले कम वजन वाले बच्चे थे जिससे बाद में मूल्यांकन स्पष्ट रूप से किया सके।

4. नापने की विधि तथा पद्धति का चुनाव एवं विकास

	उद्देश्य	पहचान सूचक	विधि
I	कीटनाशकों का उपयोग करते वक्त सावधानियों के ज्ञान की शिक्षा देना	कीटनाशकों के दुष्प्रभाव से बचने हेतु सावधानियों के ज्ञान में वृद्धि	ज्ञान प्रश्नावली
II	स्वस्थ ग्रामीण बच्चे	कम वजन वाले बच्चों के वजन में वृद्धि	पहले तथा बाद में वजन का नाप

5. **मूल्यांकन प्रतिवेदन तैयार करनाः** कोई भी अनुसंधान कार्य किया जाये और उसका प्रतिवेदन तैयार नहीं किया जाये तो अनुसंधान व्यर्थ हो जाता है। प्रतिवेदन को तैयार करने में विषय–वस्तु और उनके क्रम संबंधी कुछ महत्वपूर्ण बातें ध्यान में रखनी होती है। सबसे पहले यह कि प्रतिवेदन सुनने वाले संभावित श्रोतागण कौन हैं? प्रतिवेदन की रुपरेखा श्रोतागण पर निर्भर करेगी। श्रोताओं का हम तीन वर्गो में विभाजन कर सकते हैं:

- अनुसंधान श्रोता
- शिक्षाशास्त्री
- सामान्य श्रोता

अतः अनुश्रवण एवं मूल्यांकन व्यक्ति विशेष, संस्था, संगठन, समितियों एवं अन्य दूसरे प्रकार के संगठनों में कार्यरत लोगों के लिए महत्पूर्ण हैं।

पीएम कुसुम योजना : किसान ऊर्जा सुरक्षा एवं उत्थान महाभियान

सोनिया ऋषि, देवेन्द्र कुमार एवं के. सी. मीना
राजस्थान कृषि महाविद्यालय, उदयपुर, रानी लक्ष्मी बाई केन्द्रीय कृषि विश्वविद्यालय झॉसी एवं कृषि विज्ञान केन्द्र, अन्ता बारां

देश में सभी लोग जानते है कि किसान भाइयों को लाभ पहुंचाने के लिए केन्द्र सरकार तथा राज्य सरकारे सभी प्रकार की योजनाओं की शुरूआत करती आ रही है। ताकि किसान भाइयों को किसी भी प्रकार की समस्या का सामना ना करना पड़े। वैसे तो आप सभी लोग जानते होंगे कि देश में बहुत से ऐसे राज्य है। जहा पर सूखा पडने के कारण किसानों की खेती खराब हो जाती है। सरकार द्वारा किसानों की आय को बढाने के लिए और उनकी बेहतरी के लिए राज्य सरकार अपने प्रदेश के किसानों को सौर ऊर्जा से चलने वाले सोलर पंप उपलब्ध कराएगी, जो सिंचाई के लिए होगा। जिससे वो कभी भी बिजली के बिल की चिंता किये बगैर खेतों की सिंचाई कर सकेंगे। यही नही सौर ऊर्जा से चलने वाले सोलर पंप की मदद से निर्बाध रूप से सिंचाई की प्रक्रिया जारी रह सकेगी। इस से किसानों की आमदनी अच्छी भी होगी। इस योजना के ये लाभ उठाने के लिए सभी किसानों को कुसुम सोलर पंप योजना मे आवेदन करना होगा। कुसुम योजना के अन्तर्गत किसानों को सोलर पैनल उपलब्ध करवाने है। पहले सभी राज्य के सभी किसान भाई डीजल सिंचाई पम्पो का इस्तेमाल करते थे लेकिन अब सरकार की इस योजना के तहत सोर ऊर्जा से चलाया जायेगा। इन सभी समस्याओं को देखते हुए केन्द्र सरकार ने पी एम कुसुम (किसान ऊर्जा सुरक्षा एवं उत्थान महाभियान) योजना की शुरूआत की है। कुसुम योजना के तहत खेती की सिंचाई करने वाले पम्पों को अब सोर ऊर्जा वाले पम्पों मे बदला जावेगा। पहले जिन किसानों की खेती में सूखा पड जाने के कारण फसल खराब हो जाती है एवं किसानों को सर्दी में रात के समय फसल में पानी देते समय जिस समस्या का सामना करना पडता है वो अब नहीं करना पडेगा ।

कुसुम योजना के किर्यान्वयन के अन्तर्गत राजस्थान पहले नम्बर पर

कुसुम योजना को किसानों की आय में वृद्धि करने के लिए आरंभ किया गया है। यह योजना दिन में बिजली उपलब्ध करवाने और सौर ऊर्जा को बढावा देने मे लाभकारी साबित हुई है। राजस्थान देशभर में इस योजना के क्रियान्वयन में पहले स्थान पर है। राजस्थान में इस योजना के अन्तर्गत बिजली उत्पादन की सुविधा आरम्भ हो गई है। राजस्थान अक्ष्य ऊर्जा निगम द्वारा संचालित प्रधानमंत्री कुसुम कॉम्पोनेन्ट ए योजना के अन्तर्गत जयपुर के जिले कोटपूतली तहसील मे भालोजी गांव में प्रथम सौर ऊर्जा संयंत्र स्थापित किया गया है। जिसके लिए लगभग 3.70 करोड रू0 खर्च किये गये है। राजस्थान कुसुम योजना इस योजना के अन्तर्गत केन्द्र सरकार के साथ मिलकर राज्य सरकार प्रदेश के किसान वर्ग को सोलर पंप उपलब्ध कराएगी। जिसके लिए उन्हे सिर्फ 10 प्रतिशत का ही भुगतान करना होगा। जिस की सहायता से सभी किसान पहले से बेहतर तरीके से सिंचाई कर सकते है। राजस्थान कुसुम योजना में मिलने वाले सोलर पंप की कीमत का 60 प्रतिशत तक केन्द्र व राज्य सरकार द्वारा वहन किया जावेगा। केन्द्र सरकार द्वारा 30 प्रतिशत, राज्य सरकार द्वारा 30 प्रतिशत का और नाबार्ड द्वारा भी 30 प्रतिशत कीमत का खर्च पर लोन की भी सुविधा हैं।

राजस्थान कुसुम सोलर पंप की विशेषताएं

राजस्थान राज्य अक्षय ऊर्जा निगम द्वारा इस कुसुम योजना के तहत 3 एचपी, 5 एचपी, 7.5 एचपी एवं 10 एचपी वाट तक के सोलर पंप किसानों को दिये जावेंगे। परन्तु अनुदान 7.5 एचपी क्षमता तक देय है । इस योजना के माध्यम से मिलने वाले सौर पंप बिना किसी रूकावट के काम कर सकते है क्योंकि इनमे बिजली का इस्तेमाल नही होता और ये सौर ऊर्जा से चलते है। इसलिए किसान रात को भी सिंचाई कर सकते है। ये योजना सबसे ज्यादा लाभकारी ऐसे क्षेत्रो के लिए होगी जहा सूखा पडता है। इससे सूखे की वजह से खराब होने वाली फसल बच जावेगी। और बंजर भूमि भी कृषि योग्य बन सकेगी। इन सोलर पंप से मिलने वाली अतिरिक्त ऊर्जा को किसान बेच भी सकेंगे। जिससे उनकी अलग से आय भी हो जावेगी।

कुसुम योजना का उद्देश्य

योजना को शुरू करने का मुख्य उद्देश्य केन्द्र सरकार का यह है कि किसान भाइयों को सोलर पैनल के माध्यम से देश के किसानों को मुफ्त में बिजली उपलब्ध करवाना। बिजली उपलब्ध कराना है ताकि सभी राज्य के किसान भाई सोलर पैनल के माध्यम से खेतों मे सिंचाई कर सके। कुसुम योजना के अन्तर्गत सभी किसान भाइयों को लाभ पहुंचाया जावेगा ताकि किसान भाइयों को किसी भी प्रकार की समस्या का सामना ना करना पड़ें।

इस योजना के तहत किसानों को सिंचाई के लिए सोलर पैनल की सुविधा प्रदान करना जिससे वह अपने खेतो की अच्छे से सिंचाई कर सकेगें। इस योजना के जरिये किसान को दोहरा फायदा होगा और उनकी आमदनी मे भी बढौतरी होगी। दूसरा यदि किसान अधिक बिजली बनाकर ग्रिड को भेजते है तो उन्हे उसकी कीमत भी मिलेगी।

पी एम कुसुम योजना के लाभ

- इस योजना का लाभ देश के सभी किसान उठा सकते है।
- 10 लाख ग्रिड से जुडे कृषि पंपो का सोलराइजेशन।
- इस योजना से मेगावाट अतिरिक्त बिजली का उत्पादन होगा।
- सोलर प्लांट लगाने से किसान अपने खेतो में आसानी से सिंचाई कर सकते है।
- सोलर पेनल से जो अतिरिक्त बिजली बनेगी किसान उस बिजली को सरकारी या गैर सरकारी बिजली विभागो मे बेच सकता है।
- कुसुम योजना के अन्तर्गत जो भी सोलर पेनल लगाये जावेंगे वो बंजर भूमि मे लगाये जावेंगे जिससे कि बंजर भूमि का भी उपयोग हो जावेगा व बंजर भूमि से आय प्राप्त होगी।
- इस योजना के अन्तर्गत सोलर पेनल लगाने के लिए सरकार की तरफ से किसानो को 60 प्रतिशत केन्द्र एवम राज्य सरकार द्वारा वित्तीय अनुदान सहायता दी जावेगी व बैंक 30 प्रतिशत ऋण की

सहायता प्रदान करेगा और सिर्फ किसान को 10 फीसदी का भुगतान करना पडेगा।

- कुसुम योजना उन किसानो के लिए फायदेमंद होगी जहां सूखाग्रस्त एंव बिजली की समस्या रहती हो।
- रियायती मूल्य पर सौर सिंचाई पंप उपलब्ध कराना।
- अब खेतों को सिंचाई करने वाले पंप सौर ऊर्जा से चलेंगे किसानो की खेती मे बढावा होगा।
- योजना के तहत कम दामो पर किसानो को सिंचाई पंप दिये जावेगे।
- इस कुसुम योजना के अन्तर्गत प्रथम चरण मे चले आ रहे डीजल 17.5 लाख सिंचाई पंपो को सौर ऊर्जा से चालयाा जावेगा ताकि डीजल की खपत कम हो।
- इस योजना के तहत अब सिंचाई करने वाले पंप सौर ऊर्जा से चलेंगे ताकि किसानो की खेती मे नुकसान न हो।

कुसुम योजना के कॉम्पोनेंट्स

- **सौर पंप वितरण:** कुसुम योजना के प्रथम चरण के दौरान केन्द्र सरकार के विभागो के साथ मिलकर बिजली विभाग, सौर ऊर्जा संचालित पंप के सफल वितरण करेगी।
- **सौर ऊर्जा कारखाने का निर्माण:** सौर ऊर्जा कारखानो का निर्माण किया जावेगा जो कि पर्याप्त मात्रा मे बिजली का उत्पादन करने की क्षमता रखते है।
- **ट्यूबवेल की स्थापना:** सरकार द्वारा ट्यूबवेल की स्थापना की जायेगी जो कि कुछ निश्चित मात्रा मे बिजली उत्पादन करेंगे।
- **वर्तमान पंपो का आधुनिकरण:** वर्तमान पंपो का आधुनिकरण भी किया जावेगा तथा पुराने पंपो की नये सौर पंपो से बदला जावेगा।

कुसुम योजना के लाभार्थी

- किसान
- किसानो का समूह
- सहकारी समितियां
- पंचायत
- किसान उत्पादक संगठन
- जल उपभोक्ता एसोसिएशन।

महत्पूर्ण दस्तावेज

- आधार कार्ड, राशन कार्ड, रजिस्ट्रेशन की कॉपी,
- ऑथराईजेशन लेटर
- जमीन की जमाबंदी की कॉपी।
- चार्टेड अकाउंटेन्ट द्वारा जारी नेटवर्थ सर्टिफिकेट (विकासकर्ता के माध्यम से प्रोजेक्ट विकसित करने की स्थिति में)
- मोबाईल नम्बर
- बैंक खाता विवरण
- पासपोर्टसाइज फोटोग्राफ

ऐसे करे अपना पंजीकरण

- सबसे पहले योजना की अधिकारिक वेबसाइट पर जावे।
- होम पेज पर कुसुम योजना के लिए आवेदन पर क्लिक करे दे।
- क्लिक करने के बाद आप आवेदन पत्र खुलेगा जहा आपको पूछी गई सभी जानकारी भरनी होगी।
- यहॉ आपको अपना नाम, बैंक खाते सम्बंधी जानकारी, स्थाई पता, मोबाईल नम्बर आदि भरना होगा।
- अंत मे सबमिट के बजट पर क्लिक कर देवे।
- इसके बाद आप के चयन के बाद पंप की 10 प्रतिशत लागत आप को जमा करने के लिए निर्धारित किया जावेगा।
- इस भुगतान के बाद आप को कुछ दिनो मे सोलर पंप उपलब्ध करा दिया जावेगा।

राजस्थान कुसुम योजना से सम्बंधित कुछ महत्वपूर्ण जानकारी

- कुसुम योजना की एक खास बात यह है कि इस योजना के अन्तर्गत प्लांट की कुल लागत का 30 प्रतिशत राशि केन्द्र सरकार देगी, 30 प्रतिशत राशि राज्य सरकार देगी इसके अलावा 30 प्रतिशत राशि कृषि उपभोक्ताओ को लोन के रूप मे नाबार्ड या अन्य बैकिंग संस्थान द्वारा फाईनेन्स करवाये जावेगें। इसका मतलब यह है कि किसानों को केवल 10 प्रतिशत राशि ही देनी होगी।
- इसके अलावा अतिरिक्त बिजली उतपादन होने पर बची हुई बिजली को किसान द्वारा बेचा भी जा सकता है।
- आवेदक के पास आवेदन के समय आधार कार्ड एवं बैंक खाता होना अनिवार्य है।
- सरकार द्वारा आवेदक के खाते मे सब्सिडी की राशि भेजी जावेगी।
- इसके अलावा किसान, डिस्कॉम एवं बैंक के साथ थर्ड पार्टी एग्रीमेंट साइन किया जावेगा। किसान द्वारा बेची गई बिजली की कमाई को दो हिस्सो में बांटा जावेगा।
- पहला हिस्सा उपभोक्ता का एवं दूसरा हिस्सा लोन की किस्त का होगा। इस योजना के माध्यम से किसानो तक बिजली पहुंचेगी तथा बंजर जमीन से पैसे कमाए जा सकेंगे।

❋❋❋